(मासिक)

ज्ञानामृत

वर्ष 55, अंक 12, जून, 2020
मूल्य 8.50 रुपये, वार्षिक शुल्क 100 रुपये

परमपिता शिव परमात्मा
गीता-ज्ञान-दाता

मातेश्वरी जगदम्बा सरस्वती

आदतों के गुलाम

कहते हैं कि गुलामी का जमाना चला गया है। एक समय था जब मनुष्य को गुलाम बनाकर बेचा जाता था। फिर एक वह भी समय आया जब एक देश ने दूसरे देश को गुलाम बनाया। अब वह जमाना भी नहीं रहा परन्तु हम यह भी नहीं कह सकते कि गुलामी का अध्याय समाप्त हो गया है। सच तो यह है कि गुलामी बढ़ी ही है, हाँ, उसका रूपांतर अवश्य हुआ है। इस संसार में पहला श्वास लेने के समय से लेकर आखिरी श्वास लेने के समय तक, हमारे विचार में तो गुलामी की बेड़ियाँ हाथों और पाँवों को ही नहीं, आत्मन् को जकड़े हैं। जन्म से ही मनुष्य अपने पूर्व कर्मों और संस्कारों की बेड़ियाँ पहने हुए होता है और जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे वह आदतों का भी गुलाम बनता जाता है और हालत यह होती है कि उसकी जहनियत (बुद्धिमानी) ही गुलामी की हो जाती है।

आज कोई व्यक्ति सिगरेट पीता है तो उस आदत का वह इतना गुलाम हो चुका है कि सवा पाँच फुट का आदमी होकर भी सवा चार इंच की सिगरेट की गुलामी से छुटकारा नहीं पा सकता। सर्वशक्तिमान् परमात्मा का पुत्र होकर भी वह अपनी इस आदत और इल्लत (दुर्व्यसन) की पुरानी सड़ी हुई रस्सी को नहीं तोड़ सकता। गोया इन्सान होकर भी वह हैवान की तरह एक नहीं, कई खूँटों से बंधा हुआ है। सिगरेट के कश लगाकर अपनी नाक और साँस की नली को बिरला मिल की धुँए की चिमनी बनाने में उसको कोई एतराज नहीं। फेफड़े जलें तो जलें पर इस मनचले का मन अपनी चाल चले – इस विधि वह अपना सब-कुछ लुटाने को तैयार रहता है। दूसरा कोई व्यक्ति अपनी नोंक-झोंक और टोका-टाकी की आदत से नहीं छूट सकता। उसकी वाणी ऐसी अश्रु-गैस का काम करती है कि घर में लोगों के अश्रु टपकने लग पड़ते हैं। वह ऐसे क्लोरोफार्म का काम करती है कि लोग मूर्च्छित हो जाते हैं, काम छोड़ कर बैठ जाते हैं और हर दिन रसोई में आग जले न जले, अनबन की आग जलाकर वे अपनी बातों की सड़ी खिचड़ी बनाया करते हैं।

अब परमात्मा का अवतरण हुआ है। अब पुरानी आदतों को छोड़ने की वेला आई है। ये सब आदतें हमें उसके वरदानों से वंचित किए हुए हैं। कमाल है कि हम इन बेड़ियों को छोड़ना नहीं चाहते और जिसे हम जन्म-जन्मान्तर पुकारते थे, उसके पास पहुँचने के लिए इन आदतों की छोटी-छोटी-सी कुर्बानी भी नहीं कर सकते। शायद हम इन आदतों की गुलामी को गुलामी नहीं समझते; शायद हम इन बेड़ियों और हथकड़ियों को सजावटी पाजेब और सोने की चूड़ियां समझते हैं। ■■■

अमृत-सूची

- संजय की कलम से 3
- नवयुवकों के लिए धर्म की आवश्यकता (सम्पादकीय) 4
- यादों की महफिल (कविता) 6
- पत्र सम्पादक के नाम 7
- आदिदेवी के साथ यादगार पल 8
- विकारों के सूक्ष्म अंश 13
- प्रकृति के प्रकोप, पाप और श्राप से मुक्त होने के लिए आध्यात्मिक जागृति आवश्यक 16
- अंतर्मन का नया सॉफ्टवेयर 18
- सज़ा या मज़ा 20
- भोग्या नहीं, भगवती समझिए 23
- सुरक्षा कवच (कविता) 25
- धर्म और अधर्म 26
- विशेषता का गलत इस्तेमाल मत करो 28
- श्रद्धा-सुमन अर्पित (कविता) 29
- भय का भूत 30
- स्व-परिवर्तन से संसार परिवर्तन 32
- टूटते हुये सम्बन्धों को कैसे बचायें? 33
- सुरक्षित जीवन सफर के लिये कुछ नियम 34

सम्पादकीय

नवयुवकों के लिए धर्म की आवश्यकता

शरीर विज्ञान-वेत्ता ऐसा बताते हैं और हरेक मनुष्य का अनुभव भी ऐसा ही है कि युवावस्था में मनुष्य में अतिरिक्त शक्ति होती है। यदि उस अतिरिक्त शक्ति को रचनात्मक कार्यों में प्रयोग न किया जाये अथवा यदि युवक द्वारा सन्तोष, शान्ति एवं सद्विचार देने वाला कोई उपाय न अपनाया जाये तो अधिक शक्ति के व्यय में वह या तो स्वयं को किन्हीं बुरी आदतों में डाल देता है और या उन शक्तियों के दुरुपयोग से समाज में विध्वंसात्मक कार्य करता है। यही कारण है कि आज असन्तुष्ट एवं स्नेह-वंचित युवक नशीले पदार्थों अथवा मादक द्रव्यों का सहारा ढूँढ़ते हैं या समाज की रीतियों एवं नीतियों के प्रति रोष प्रकट करने के लिए तोड़-फोड़ अथवा उग्र आन्दोलनों की रीति अपनाते हैं।

स्थिति का सुधार कैसे हो?

अत: देखना होगा कि इस स्थिति का सुधार कैसे हो? यह तो एक निश्चित मत है कि युवकों द्वारा आज जो कुछ भी हो रहा है उसमें दोष युवकों का नहीं है बल्कि या तो हमारी शिक्षा-पद्धति में कोई कमी है या हमारे घरेलू जीवन में कोई त्रुटि है या आज के बदले हुए वातावरण में युवकों के माता-पिता, शिक्षकों एवं संरक्षकों का युवकों के प्रति जो दृष्टिकोण होना चाहिए, उसमें किसी सुधार की आवश्यकता है।

कुछ भी हो, यह समस्या इतनी गम्भीर हो गई है कि इस ओर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है और शीघ्र ही इस बारे में कोई ठोस कार्य करने की जरूरत है क्योंकि युवक वर्ग संसार की आबादी का एक बहुत बड़ा भाग है और कल उन्हें ही देश का नेतृत्व करना होगा तथा समाज की समस्याओं का सामना करना होगा। केवल यह शिकायत करते रहना कि आज युवा वर्ग में असन्तोष है या कि वह हमारी चिर-स्थापित मर्यादाओं तो तोड़ रहा है या कि उसमें बड़ों के प्रति आदर-भाव नहीं है, इससे तो समस्या का हल नहीं होगा। तब इसका हल क्या है?

समस्या का समाधान

यों युवा-असन्तोष को मिटाने के लिए तो एक साथ कई योजनाओं को बनाना होगा परन्तु इस छोटे-से लेख का लक्ष्य इस बात की ओर ध्यान दिलाना है कि इस प्रसंग में धार्मिक शिक्षा का जो महत्त्व होना चाहिए, आज वह महत्त्व उसे नहीं मिल रहा है। शायद इसका कारण यह है कि हमारे देश में इतने धर्म हैं और हरेक धर्म के अन्तर्गत भी इतने सम्प्रदाय हैं कि सरकार के लिए यह निर्णय करना ही मुश्किल हो जाता है कि हम युवा पीढ़ी को कौन-से धर्म की शिक्षा दें?

धर्म की परिभाषा

'कौन-से धर्म की शिक्षा दें?' वास्तव में यह प्रश्न ही गलत है क्योंकि धर्म अनेक नहीं हैं बल्कि सही माने में धर्म एक ही है। धर्म का अर्थ है – धारणा। प्रैक्टिकल जीवन में उच्च नैतिक मूल्यों की धारणा जिससे कि मनुष्य का चरित्र ऊँचा हो और वह

अन्य आत्माओं से सद्व्यवहार करे तथा सबके साथ ठीक रीति से नाता निभाये अर्थात् कर्त्तव्य का पालन करे – इसे ही 'धर्म' कहते हैं। ऐसे 'धर्म' की आवश्यकता हरेक मनुष्य के लिए है, चाहे वह युवक हो या वयोवृद्ध। परन्तु युवावस्था एक ऐसी अवस्था है जब मनुष्य का मस्तिष्क उन्नत हो रहा होता है और जब उसमें संस्कार दृढ़ होते जा रहे होते हैं। अत: यदि उस समय उसे धार्मिक शिक्षा न दी जाये तो बाद में गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने पर अथवा व्यावसायिक क्षेत्र में उतरने पर किसी परिस्थिति में क्या कर्त्तव्य करना चाहिए – इस ज्ञान से वह अपने को वंचित अनुभव करेगा। इसका परिणाम यह होगा कि दूसरों के साथ उसके जो सम्बन्ध हैं, उनमें कुछ तनाव पैदा होना सम्भव होगा अथवा कुछ नैतिक मूल्यों का उल्लंघन होगा जिसके फलस्वरूप उसके मन में अशान्ति होगी। अत: इस अवस्था में मनुष्य के लिए धार्मिक शिक्षा आवश्यक है।

'धर्म' मन को शीतलता और शान्ति देता है

मेरे विचार में 'धर्म' वह है जो मनुष्य के मन को शीतलता अर्थात् शान्ति प्रदान करता हो, उसमें सेवा, धीरज, त्याग, सहानुभूति, आत्म-कल्याण, परोपकार, सादगी, सद्विचार और निर्विकार जीवन भी भावना जागृत करता हो। यह तभी होता है जब मनुष्य, जीवन में किसी उच्च लक्ष्य को धारण करता है, स्वयं को किसी उच्च मानसिक स्थिति तक ले जाने का संकल्प लेता है और स्वयं को पहचानते हुए मानवमात्र के साथ अपने शाश्वत नाते को तथा अपने कर्त्तव्य को पहचानता है। तभी उसकी आस्था एक ज्योतिस्वरूप और कल्याणकारी अर्थात् 'शिव' परमात्मा में सुदृढ़ होती है और वह उस सर्वशक्तिमान विश्व-पिता द्वारा निर्धारित नियमों का पालन करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है।

धर्म का पालन मनुष्य की विशेषता और धर्म के उल्लंघन से उसका पतन

मनुष्य तथा अन्य जीव प्राणियों में यही एक विशेष अन्तर है कि मनुष्य माता-पिता, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री, अतिथि-पड़ोसी आदि-आदि नामों द्वारा सूचित होने वाले सम्बन्धों को समझता है और उनसे उसका क्या व्यवहार होना चाहिए, इसका ज्ञान धारण करने की वह क्षमता रखता है। यदि यह ज्ञान उसे प्राप्त न हो तो वह उस गन्ने के समान है जिसमें रस न हो अथवा वह उस पक्षी के समान है जिसके पर टूट चुके हों। फिर युवावस्था में जबकि मनुष्य में शक्ति का एक ज्वारभाटा होता है, जवानी का जोश होता है, उभरती उमंगें और नई तरंगें होती हैं, तब यदि मनुष्य को दिशा-निर्देश देने वाला धर्म-ज्ञान न हो तो वैसा ही अनिष्ट होने की सम्भावना बनी रहती है जैसा कि नदी में बाढ़ आने से अथवा भूकम्प आने से या ज्वालामुखी के फूट निकलने से बनी रहती है। 'धर्म' वह अंकुश है जो मनुष्य को सन्मार्ग से विमुख होने से रोकता है। यह मनुष्य के विचारों का एक ऐसा सुन्दर बाँध है जो उसे सुदृढ़ मार्यादा में रखते हुए उसकी शक्ति को रचनात्मक कार्यों में लगाता है। यह मनुष्य को शान्ति के सागर परमात्मा से जोड़कर मनुष्य-मनुष्य के मन को मिलाने का काम करता है और उसमें प्रेम का रस भरता है। मनुष्य के मन को सन्तुलन और सन्तोष प्रदान करने वाला 'धर्म' ही मानव समाज की एक-मात्र आशा है।

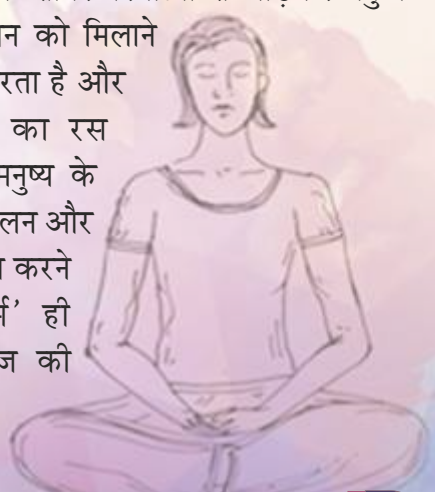

धार्मिक शिक्षा को छोड़ना गोया संसार को अनैतिकता, उच्छृंखलता, असन्तोष, नहीं-नहीं विनाश की ओर ले जाना है।

धर्म का कर्म से गहरा सम्बन्ध

'धर्म' से मेरा अभिप्राय कर्मकाण्ड से नहीं है, और न ही अन्धश्रद्धा पर आधारित है या विवेक-विरुद्ध एवं तर्क-विहिन किन्हीं सिद्धांतों से है। मैं तो धर्म को एक ऐसी विद्या मानता हूँ जो विवेक-सम्मत हो और हमारे दैनिक जीवन को सुख-शान्ति सम्पन्न बनाने वाली हो। अत: धर्म का कर्म से बहुत गहरा सम्बन्ध है परन्तु आज एक बहुत बड़ा अनिष्ट यह हुआ है कि धर्म और कर्म का क्षेत्र अलग-अलग मान लिया गया है। आज लोगों का ऐसा दृष्टिकोण बन चुका है कि जब वे किसी धार्मिक स्थान पर जाते हैं तो पूजा, प्रवचन, प्रार्थना, प्रेयर या इबादत का आधार लेते हैं। जब कर्मक्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो 'धर्म' को धर्म-स्थान पर ही छोड़ आये होते हैं और अपने व्यावसायिक जीवन, पारस्परिक सम्बन्धों इत्यादि में उसे नहीं अपनाते।

शिवबाबा का सन्देश

परमपिता परमात्मा शिव का सन्देश है कि कर्म और धर्म अलग हो जाने के कारण अथवा धर्म-विमुख होने के कारण आज मनुष्य विकर्म कर रहा है। अत: 'धर्म-ज्ञान' प्राप्त करके हम पवित्र बनें और योगी बनें ताकि संसार में फिर से धर्मयुग और उसके फलस्वरूप सतयुग आ जाये। यदि युवा-वर्ग इस सन्देश से लाभ उठाये तो सचमुच देश का कल्याण हो जाये। ■■■

यादों की महफ़िल

ब्रह्माकुमार राजवीर, बड़ौत (उ.प्र.)

मम्मा तेरी यादों की यहां महफ़िल सजाई है।
याद तुझे कर-कर के देखो आंखें भर आई हैं।।

निश्चय हुआ बाबा में और जीवन सौंप दिया,
एक बल एक भरोसे, सारी ज़िन्दगी बिताई है।

हर घड़ी है ये अंतिम घड़ी, तूने तो यही माना,
थोड़े से समय में तूने, की ज्यादा कमाई है।

जो भी कहा बाबा ने, हांजी कहा, कर डाला,
मम्मा तेरे जीवन में, रही कितनी सच्चाई है।

ब्रह्मा के वचनों को, हुक्मी का हुक्म माना,
कैसा सच्चा समर्पण है, कैसी फ़र्ज़ अदाई है।

बाबा की तरह तू भी, बड़े दिल वाली थी,
सबकी सभी कमियां, तूने दिल में समाई हैं।

निर्भय रही दुर्गा-सी, प्रेम शीतल झरने-सा,
आया जो भी पास तेरे, तूने करुणा लुटाई है।

लक्ष्य को पाने को तप-त्याग किया कितना,
प्रियतम की यादों में, तूने नींद गंवाई है।

शारदे, तेरी वाणी में एक मीठा जादू था,
कानों में है गूंज रही, जो ज्ञान-वीणा बजाई है।

मम्मा, तेरी यज्ञ-सेवा कोई कैसे भुलाएगा,
दिल में तेरी मूरत, नैनों में सूरत समाई है।

हृदय से नमन तुमको, हैं श्रद्धा के सुमन अर्पित,
वो राह हम नहीं छोड़ेंगे, जो तूने दिखाई है।

मम्मा तेरी यादों की यहां महफ़िल सजाई है।
याद तुझे कर-कर के देखो आंखें भर आई हैं।।

पत्र सम्पादक के नाम

मैं ज्ञानामृत की नियमित पाठक हूँ। इसका प्रत्येक लेख दिल को छू लेने वाला है। दिसम्बर, 2019 अंक के लेख 'हिम्मत' में जिस तरह 80/20 का उदाहरण देकर समझाया गया है वो बहुत अच्छा लगा। 'सावधान! मित्र रूप में शत्रुओ को पहचानो' लेख में व्हाटसअप, फेसबुक आदि किस प्रकार आध्यात्मिक जीवन के शत्रु हो सकते हैं, उससे सावधान किया गया है। 'किसान सशक्तिकरण – जैविक-यौगिक खेती द्वारा' लेख भी बहुत सराहनीय है।

फरवरी, 2020 अंक में 'कैसे लें बदला?' लेख में लेखिका ने बताया कि बदला लेने के घटिया सोच को बदलें। ये सोचें कि भगवान को, उनकी इतनी ऊँची पालना के बदले क्या दें? क्या बदले की निकृष्ट भावना के साथ हम भगवान के सामने खड़े हो पाएँगे? 'काम और प्रेम में अंतर' लेख भी बहुत सराहनीय है। काम को प्रेम समझ आज मानव आत्मघाती बन चुका है। ज्ञानामृत का हर लेख ज्ञान की नई रोशनी देकर उमंग-उत्साह बढ़ाता है।

शोभना बहन, वडोदरा (गुजरात)

जनवरी, 2020 का अंक इतना पसंद आया कि बताना मुश्किल है। 'स्वयं को अहंकार से बचाओ' लेख चिन्तन करने को विवश करता है। लगातार पत्रिका पढ़कर ज्यादा से ज्यादा ज्ञान हासिल कर रहा हूँ। पत्रिका दिन दुगुनी, राज चौगुनी उन्नति करे।

आचार्य डॉ.सुभाष पुरीरोही, सम्पादक, 'धारीवाल दर्पण मासिक', धारीवाल (पंजाब)

मार्च, 2020 अंक में प्रकाशित, सेवानिवृत्त आई.ए.एस.ब्र.कु.सीताराम मीना के अनुभव के लेख 'ईश्वरीय ज्ञान के बल से व्यक्तिगत, पारिवारिक और प्रशासनिक क्षेत्र की उपलब्धियाँ' ने मुझे बहुत प्रेरित किया। इसके लिए मैं ज्ञानामृत परिवार का बहुत आभार प्रेषित करता हूँ।

विनोद कुमार गुप्ता, बिलासपुर (छ.ग.)

मैं ज्ञानामृत मासिक पत्रिका का नियमित पाठक व सदस्य हूँ, हर महीने ज्ञानामृत में कुछ न कुछ विशेष ज्ञान की प्वाइंट्स मुझे मिलती रहती हैं। मार्च, 2020 में 'प्रश्न हमारे, उत्तर दादी जी के' सबसे अच्छा लगा। 'स्वैच्छिक गुलामी से बचें' लेख ने आत्मा को पूरी तरह से छू लिया। इसीलिए यह पत्र भेज रहा हूँ। आप विश्व की आत्माओं को ऐसे ही नवीनतम ज्ञान प्रदान करते रहें, यही मेरी शुभ आशा है।

ब्रह्माकुमार गजानंद पटेल, शान्तिवन

'ज्ञानामृत' पत्रिका मिली। विश्वास नहीं हुआ कि दिव्य गुणों से युक्त पत्रिका भी छप रही है। आज लोग अनेक मानसिक विकारों से ग्रसित हैं। फरवरी, 2020 अंक में 'गुस्से का समाधान' लेख में बताया है कि इस विकार से बचने का उपाय है, हम शांत रहें ताकि वाक्युद्ध जैसी स्थिति से बच सकें। 'संतोषी सदा सुखी' लेख समसामयिक है, आपाधापी के युग में व्यक्ति को संतोष से जीने का यह संकेत देता है कि हमें उचित प्रयत्नों से जो मिले वही स्वीकार करना है। लोगों में मानवीय गुण विकसित करने के लिए यह पत्रिका मानसिक उपचार की तरह है तथा लोगों को जीने का रास्ता सिखाती है, बस, सीखने वाला होना चाहिए।

दिलीप गुप्ता, बरेली, उत्तर प्रदेश

आदिदेवी के साथ
यादगार पल

ब्रह्माकुमार बृजमोहन भाई, देहली

सर्व देवियों में जो आदिदेवी है वह है जगदंबा। सवाल यह है कि उस आदिदेवी ने ऐसा कौन-सा कर्त्तव्य किया जिससे उसका जगदंबा नाम पड़ा। हम सब जानते हैं कि शिव बाबा ने ब्रह्मा बाबा के माध्यम से ज्ञान देना शुरू किया। उस ज्ञान को 100 प्रतिशत और सबसे कम समय में किसने धारण किया? इसमें सर्वोत्तम रोल मॉडल मम्मा है। हम सब जानते हैं कि मम्मा साधारण परिवार से थी, उससे अधिक अमीर परिवारों की बहनें यज्ञ में समर्पित हुई थी लेकिन एक बिल्कुल साधारण कुमारी को बाबा ने मम्मा बना दिया। उसके बाद उसको ज्ञान-ज्ञानेश्वरी बना दिया और फिर सतयुग में वही राज-राजेश्वरी श्री लक्ष्मी बन गई। ऐसी कौन-सी जादू की कमाल मम्मा में थी?

कैसे बन गई जगत की अंबा?

ज्ञान तो हम सभी सुन रहे हैं, धारण भी कर रहे हैं लेकिन ज्ञान के एक-एक शब्द को अपने स्वरूप में उतार लेना, यह विशेषता हमने मम्मा में देखी। बहुत सारी ब्रह्माकुमारियों में मम्मा भी एक ब्रह्माकुमारी थी। जब बाबा ने मम्मा को, मम्मा का रोल दिया तो मम्मा की शारीरिक आकृति ही बदल गई अर्थात् जिम्मेदारी के ज्ञान को मम्मा ने जीवन में ऐसा ढाला कि छोटी उम्र की कुमारी का मां का रूप हो गया। आयु छोटी लेकिन रूप माता का, बाबा भी उनको मम्मा कहते थे। जब वह यज्ञ-माता हो गई तो बाबा की भी माता हो गई। मम्मा की जो माँ थी वह यज्ञ की आफिशियल भोग लगाने वाली संदेशी थी, वह भी उनको मम्मा कहने लगी। इस प्रकार मम्मा ने न केवल मम्मा का टाइटल प्राप्त किया बल्कि वह मम्मा का स्वरूप बन गई। उसी रूप से उन्होंने यज्ञ को संभाला। उस समय भारत में गिनती के सेवाकेंद्र थे।अव्यक्त बापदादा कहते हैं कि जब से विदेशी बच्चे आए तब से मेरा विश्व-कल्याणकारी नाम सिद्ध हो गया लेकिन जब मम्मा थी तब ना तो विदेशी बच्चे थे और भारत के बच्चों की संख्या थोड़ी थी, तो भी वह जगत की अंबा बन गई, कैसे?

अपनी बुद्धि नहीं चलाई

ब्रह्मा बाबा तो शिव बाबा के रथ थे। उन्होंने फिर भी कुछ साक्षात्कार किए थे लेकिन मम्मा ने तो कभी लाइट का एक तिरमिरा भी नहीं देखा अर्थात् कोई भी साक्षात्कार नहीं किया। मम्मा ने बाबा के हर इशारे को ईश्वर का आदेश माना। बाबा कहा करते थे कि मम्मा मेरे से आगे इसीलिए चली गई क्योंकि मम्मा ने कभी कोई साक्षात्कार नहीं किया। बाबा ने जो कहा उसको मम्मा ने अपने अंदर विश्लेषण करके कि यह भगवानुवाच है, साकार कर दिखाया, कभी अपनी बुद्धि नहीं चलाई।

सबसे कम समय में पास विद हाईएस्ट ऑनर हो गई

उन दिनों कई लोग कहते थे कि साधु-संत-महात्माओं के चेहरे तो बड़े ह्रष्ट-पुष्ट और गोल-गोल नजर आते हैं तो हम मम्मा का उदाहरण दिया करते थे कि हमारी मम्मा को देखो, मम्मा ने बहुत थोड़े समय में

ही संपूर्णता के चिन्ह अपने चेहरे में धारण कर लिए थे, मम्मा थोड़े-से समय में पास विद हाईएस्ट ऑनर हो गई। उन्होंने समय को गिनती नहीं किया कि कितना बाकी है। ऐसा भी नहीं था कि मम्मा कहीं अलग से बैठकर पहाड़ी पर तपस्या करती थी। बाबा ने कहा है, यह ज्ञान 24 घंटे का है। तपस्या का मतलब है कि रोज के जीवन में अगर कोई परिस्थिति आ भी जाती है तो उसमें इस प्रकार से चलना कि किसी को पता भी ना लगे कि हम परिस्थितियों के बीच में हैं और फिर उस परिस्थिति को पार भी कर लेना।

शिक्षा ऐसे देती थी कि किसी भी बच्चे को भारी ना लगे

मैं मम्मा के संपर्क में सन् 1955 में आया, तब माता-पिता के साथ पहली बार मधुबन आया था। उन दिनों इस विश्व विद्यालय का स्थान कोटा हाउस था, जो बाद में राजस्थान गवर्नमेंट का सर्किट हाउस बन गया। कोटा हाउस के पीछे धौलपुर हाउस था। धौलपुर हाउस में मेहमानों को रखा जाता था। दोनों हाउस एक-दूसरे से जुड़े हुए थे। कोटा हाउस में आश्रम था। कोटा हाउस की सीढ़ियों में ही सारे भाई-बहनें समा जाते थे जब रात को मम्मा-बाबा सामने बैठ जाते थे और रात्रि का क्लास होता था। उन दिनों माउंट आबू की आबादी इतनी नहीं थी, खुली सड़कें थी, बाबा हम को साथ लेकर घूमने जाते थे, मम्मा भी साथ जाती थी। सुबह क्लास के बाद मम्मा सीटी (व्हिसल) बजाती थी, सब बच्चे बाहर आ जाते थे। उसके बाद बाबा-मम्मा और बच्चे साथ-साथ चलते थे सुबह की सैर के लिए। हर बच्चे का दिल होता था कि हम थोड़ी देर के लिए बाबा की उंगली पकड़ लें या मम्मा की उंगली पकड़ लें। बारी-बारी बच्चे बाबा-मम्मा की उंगली पकड़ के चलते थे। बीच में बाबा अचानक रुक जाते थे और पीछे मुड़कर बच्चों को पूछते थे, शिवबाबा याद है? उन दिनों कोई-कोई पादरी या नन सुबह-सुबह सैर कर रहे होते थे, वे चुपचाप चलते थे तो बाबा बच्चों का ध्यान खिंचवाते थे कि देखो, ये गॉड की याद में चल रहे हैं। तभी से यह स्लोगन निकाला, 'नन बट वन' अर्थात् जैसे यह नन ईश्वर को याद करती हुई चलती है, ऐसे ही आपको भी शिव बाबा की याद में चलना है। सैर करके जब हम वापस लौटते थे तो एक चाय की बड़ी केतली होती थी, जो एक टेबल पर रखी होती थी। सब अपना-अपना कप ले करके आते थे। बाबा बड़े उमंग से बुला कर कहते थे, लो बच्चे चाय। मम्मा भी यह सेवा करती थी, वे थोड़ा धीरे बोलती थी। मम्मा से अधिक सादगी हमने किसी की भी नहीं देखी। ब्रह्माकुमारियों की सादी ड्रेस, मम्मा ने हमेशा वही पहनी। बाबा ने भी सादी ड्रेस पहनी। बाबा के लिए तो कई माताएं स्वेटर बुन कर ले आती थी, टोपा ले आती थी, तो बाबा उन्हें खुश करने के लिए थोड़ी देर के लिए पहन लेते थे लेकिन मम्मा इन बातों से भी न्यारी थी। उनकी अंतर्मुखता बहुत गहरी थी। शांति में रहना और कम बोलना, यह उनकी विशेषता थी। मम्मा की आवाज बहुत मधुर थी जैसी गायकों की होती है और शांति का अभ्यास इतना करती थी कि यदि दो-तीन लोग साधारण आवाज में भी बात कर रहे हों और मम्मा पास से गुजर जाए तो उन्हें लगता था कि हम बहुत जोर से बोल रहे थे। मम्मा कोई भी बात बोल करके नहीं सिखाती थी, अपनी धारणाओं से सिखाती थी। जैसे एक लौकिक मां अपने बच्चे को समझाती है, इसी तरह से मम्मा बच्चों को बहुत प्यार से समझाती थी। शिक्षा ऐसे देती थी कि किसी बच्चे को शिक्षा भारी ना लगे और वह बच्चा दोबारा मम्मा के सामने जाने में संकोच भी ना करे।

वे बहुत-बहुत मधुर बोलती थीं

मम्मा छोटे या बड़े सब को इतना सम्मान देती थी कि 'जी' कहे बिना बात नहीं करती थी। किसी का भी नाम 'जी' लगाए बिना नहीं बोलती थी। मैं तो बहुत छोटा था, फिर भी पत्र भी लिखती थी तो उसमें लाडले बृजमोहन 'जी' लिखती थी। लाडले शब्द दिल से लिखती थी, पत्र गुरुमुखी भाषा में लिखती थी। मम्मा

के पत्र में शब्द थोड़े होते थे परन्तु सार बहुत भरा होता था। तैश-जोश-गुस्सा, ये सब मम्मा के ना तो चेहरे पर कभी दिखाई दिए और ना ही उनकी वाणी में कभी आए, वे बहुत-बहुत मधुर बोलती थी। मम्मा ने ज्ञान को व्यवहारिक गुणों में बदला हुआ था। जब ब्रह्माभोजन होता था तो बाबा भी बैठते थे, मम्मा भी बैठती थी। हम देखते थे कि मम्मा की भोजन खाने की गति और भोजन की मात्रा बहुत ही सीमित होती थी। मम्मा हर बात को संभाल लेती थी, महसूस नहीं होने देती थी कि कुछ हुआ भी है।

मम्मा का रूहानी आकर्षण बहुत था

मैं पंजाब में, भाखड़ा नंगल में सर्विस करता था और वहाँ सेवाकेंद्र भी चलता था। उन दिनों अंबाला छावनी में सेवाकेंद्र था, वहां से बहुत सारे युगल ज्ञान में निकले थे। उस समय लोग कहते थे कि ब्रह्माकुमारियाँ छोटी-छोटी लड़कियां हैं, इनमें कोई परिवार वाला तो है ही नहीं, इस कारण युगलों का बहुत महत्व था। अंबाला से 8-9 युगल ज्ञान में चले थे। इंदौर के ओमप्रकाश जी और उनके माता-पिता भी अंबाला से ही ज्ञान में चले थे। मधुबन में समर्पित खन्ना जी, गुरमुख जी थे, ये सब भी वहीं के थे। मेरे माता-पिता भी युगल थे और युगलों को सभाओं में दिखाया जाता था कि ब्रह्माकुमारियों में केवल कन्याएँ ही नहीं, युगल भी हैं। मम्मा अंबाला छावनी में आई हुई थीं। अंबाला से ट्रेन नंगल तक चलती थी और वापस भी आती थी। मम्मा का उसी ट्रेन से नंगल डैम आने का कार्यक्रम बना, क्लास के सभी भाई-बहनें बहुत खुश हुए। हम सब मम्मा को भाखड़ा डैम के ऊपर ले गए। मैंने मम्मा को बताया कि यह डैम बहुत बड़ा है, यदि यह टूट जाए तो सारी दिल्ली में और पंजाब में पानी भर जाएगा, इसको देखकर आपको क्या प्रेरणा आ रही है, बताइए। मम्मा ने कहा, यह बिजली बनाने और खेती-बाड़ी आदि की बहुत सेवा करेगा, बाद में विनाश के समय टूटेगा। लुधियाना के नजदीक रहने वाले एक युगल रातभर 80 मील साइकिल चला कर के मम्मा से मिलने आये। वे थे विजय बहन (जींद (हरियाणा) सेवाकेंद्र की इंचार्ज) के माता-पिता। उनके अंदर कितनी जबरदस्त लगन थी, मम्मा के लिए कुछ भेंट भी लेकर के आए थे। हमने देखा कि मम्मा का रूहानी आकर्षण बहुत था। उस समय हमारे पास जो स्टूडेंट थे वे मम्मा की एक दिन की पालना लेकर के इतने पक्के हो गए मानो दो साल की पालना उन्हें एक दिन में ही मिल गई। फिर मम्मा ट्रेन से ही वापस अंबाला के लिए चल पड़ी। हमने मम्मा के लिए कुछ संतरे खरीदे, ट्रेन तो चल पड़ी थी, एक इंजीनियर भाई था, उसके पास बड़ी मोटरसाइकिल थी, मैं उसके पीछे बैठा, उसने मोटरसाइकिल इतनी तेज गति से दौड़ाई कि अगले स्टेशन आनंदपुर साहब में हम ट्रेन को पकड़ सके। हमने मम्मा वाले कंपार्टमेंट को खटखटाया, विश्वरत्न दादा ने दरवाजा खोला और हमने सन्तरे दे दिए। हमें बहुत खुशी महसूस हुई।

छोटी-छोटी बातों पर भी मम्मा शिक्षा देती थी

यज्ञ की संभाल का काम बाबा ने मम्मा को दिया हुआ था। उस समय रात को कचहरी होती थी। कचहरी का अर्थ था कि धर्मराज की कचहरी में जाने से पहले यहीं अपने कर्मों का हिसाब-किताब समाप्त कर लिया जाए। पहले मामा थोड़ी क्लास कराती थी, उसके बाद हर एक को चांस होता था कि वह ज्ञान-योग-धारणा आदि के बारे में कोई प्रश्न पूछे या दिनभर में यज्ञ की मर्यादा के विरुद्ध कोई बात देखी हो तो बताए । फिर मम्मा उस पर बहुत प्यार से शिक्षा देती थी। कचहरी का यह सिस्टम रोज चलता था। एक दिन एक बहन ने पूछा कि आज ब्रह्माभोजन हुआ था, उसमें खीर भी मिली थी और पापड़ भी मिला था। मैंने अपने हिस्से की खीर ना ले करके उसके बदले में एक पापड़ और ले लिया अर्थात् दो पापड़ ले लिए तो क्या इसमें कहीं मेरी आसक्ति है? मम्मा ने कहा, हाँ, इसमें आपकी आसक्ति है। भले ही आपने खीर छोड़ी है परंतु आपने दूसरा पापड़ मांगा, इसका मतलब

आपकी पापड़ में आसक्ति है। नॉर्मल सिस्टम यह था कि जिसकी थाली में जो परोसा जाए उसको उसी में संतुष्ट रहना है। इस तरह की छोटी-छोटी बातों पर भी मम्मा शिक्षा दिया करती थी।

मम्मा निरंतर योग का अभ्यास करती थी

आप जब भी मम्मा का फोटो देखेंगे तो आपको लगेगा कि उनकी आँखें सामने देख रही हैं लेकिन बहुत गौर से देखेंगे तो लगेगा कि उनकी आँखें थोड़ी-सी ऊपर को हैं अर्थात् उनकी बुद्धि का योग लगा हुआ है। मम्मा निरंतर योग का अभ्यास करती थीं। कई बार हम सब कहते हैं कि अब योग का समय पूरा हो गया। इसका मतलब है कि हमने योग के लिए कुछ समय निश्चित कर रखा है लेकिन हर कर्म करते हुए, हर पल योग में रहना, यह मम्मा के जीवन में हमने देखा।

बचत की भावना संस्कारों में होनी चाहिए

मम्मा की इकोनॉमी भी बड़ी जबरदस्त थी। मम्मा कहती थी, बचत की भावना आपके संस्कारों में होनी चाहिए। यहाँ तक मम्मा कहा करती थी कि मानलो, आपको स्नान करना है और पानी बहुत मात्रा में उपलब्ध है तो भी आपको उतना ही पानी लेना है जितना आवश्यक है, अधिक नहीं। आप यह नहीं सोचो कि पानी तो बहुत उपलब्ध है, मैं ज्यादा प्रयोग में ले लूँ तो हरजा नहीं। आपके बचत के संस्कार अगर किसी एक बात में नहीं होंगे तो और बातों में भी आप ढीले हो जाएंगे। मम्मा सिखाती थी कि एक दिन ऐसा भी आएगा जब आपको बहुत थोड़ा पानी मिलेगा स्नान करने के लिए, अभी से ऐसा अभ्यास अगर किया हुआ होगा तो उस समय तकलीफ महसूस नहीं होगी। साबुन का प्रयोग भी बचत के साथ करना है, यह नहीं देखना है कि साबुन बहुत है तो खूब प्रयोग में ले आओ अर्थात् अपने संस्कारों में बचत की आदत को कूट-कूट कर डालना है। उस समय मम्मा से जिन बच्चों को पालना मिली, उनमें मम्मा ने ऐसे संस्कार डाल दिए कि आज वे कितने भी वैभवों के बीच चले जाएं, वैभव उन्हें बोझ लगते हैं और सादगी में उन्हें खुशी मिलती है। मम्मा ने अपने बच्चों में जो रूहानियत की शक्ति भरी उससे जबरदस्त आत्मिक शक्ति आ गई है।

मम्मा की वाणी बड़ी तार्किक थी

बाबा को बहुत उमंग था कि मम्मा सेवा के लिए भ्रमण करें, जगह-जगह जाकर के ज्ञान सुनाएं क्योंकि मम्मा का बहुत प्रभाव था। एक बार बाबा ने मम्मा को कहा कि आप कानपुर हवाई जहाज से जाओ। मम्मा दिल्ली से कानपुर हवाई जहाज से गई। मम्मा का एक फोटो भी आप सब ने देखा होगा जिसमें उन्हें हवाई जहाज से उतरते हुए दिखाया गया है। कानपुर में तीन युगल बहुत पक्के ज्ञान में चल रहे थे, एक, संतराम वकील जो मधुबन में भी रहे, दूसरे, त्रिलोकचंद वकील और तीसरे थे गुप्ता जी। कानपुर में एक बहुत बड़ा सेठ था लाला हरबिलास राय, उसी ने कानपुर में सेवाकेंद्र खुलवाया था। मम्मा के कानपुर आने की चर्चा सारे शहर में फैल गई थी। कानपुर के एक बहुत प्रसिद्ध हॉल में कार्यक्रम रखा गया था। उस समय आर्य समाजी हमारे अच्छे मित्र थे। आप सब जानते हैं कि स्वामी दयानंद ने एक पुस्तक लिखी है 'सत्यार्थ प्रकाश'। एक बार वह मुझे पढ़ने को मिली, तो मैंने देखा कि उसमें हर धर्म एवं सम्प्रदाय का खंडन-मंडन किया हुआ है। आर्य समाजियों ने पक्की तैयारी कर ली कि आधे हॉल को वे अपने लोगों से भरेंगे। पत्रकारों को भी उन्होंने बुला लिया और मन में ठान लिया था कि हम इनकी मम्मा से खूब प्रश्न पूछेंगे। त्रिलोकचंद वकील स्टेज सेक्रेटरी थे । मम्मा सभा में आई, मंच पर खड़े होकर पहले सबको दृष्टि दी और फिर अपने स्थान पर बैठ गई। वे लोग जो प्रश्न पूछने आए थे, मम्मा की दृष्टि से ऐसे प्रभावित हो गए कि प्रश्न पूछना ही भूल गए। मम्मा के रूहानी व्यक्तित्व की उन पर ऐसी छाप पड़ी जो वे सोचने लगे कि क्यों ना हम इनका प्रवचन ध्यान से सुनें। फिर तो पिन ड्रॉप साइलेंस हो गई। मम्मा ने एक घंटा भाषण किया। मम्मा की वाणी बड़ी तार्किक थी। उनकी वाणी में कोई प्रश्न उठा ही नहीं सकता था। वे

कोई प्रश्न मन में उत्पन्न करें, इससे पहले अगली लाइन में उसका उत्तर आ जाता था। अगले दिन अखबारों में इस कार्यक्रम की बहुत चर्चा हुई। अभी तक ब्रह्माकुमारियों के किसी कार्यक्रम की ऐसी आवाज नहीं फैली थी। बाबा हमेशा कहते थे कि मम्मा सेवा पर जाए तो कोई भी सामने हो, साधु या संन्यासी, सब उसके आगे झुकेंगे।

मम्मा से मेरी आखरी मुलाकात

हमें तो स्वप्न में भी नहीं था कि मम्मा शरीर छोड़ने वाली है, इतना पता था कि मम्मा का मुंबई में बहुत बड़ा ऑपरेशन हुआ है और डॉक्टर ने कहा है कि काफी गंभीर स्थिति है। रमेश भाई ने बाबा से पूछा कि मम्मा को बताएं या नहीं बताएं, तब बाबा ने कहा, मम्मा में हर परिस्थिति का सामना करने की शक्ति है, बता दो। मम्मा को बताया गया। तब मम्मा ने कहा कि मैं मुंबई में नहीं रहना चाहती, मुझे आबू में ले चलो। मैं तो अपने ऑफिस से छुट्टी लेकर के आबू में आता था और मुझे बीमारी की गंभीरता का कोई विशेष ज्ञान नहीं था क्योंकि मम्मा का चेहरा तो हमेशा खिला हुआ दिखता था। मधुबन की मोहिनी बहन मम्मा की ब्राह्मणी थी। वह बताती थी कि उनकी तकलीफ असहनीय है लेकिन हमें कभी मम्मा के चेहरे से लगा नहीं कि वे तकलीफ में हैं। एक सुबह मैं नक्की झील का चक्र लगा कर के वापस पांडव भवन के गेट में प्रवेश कर रहा था और उसी समय मम्मा अपनी ब्राह्मणी जमुना बहन के साथ गेट से निकलकर सैर करने के लिए जा रही थी। मम्मा का आकर्षण तो था ही इसलिए मैंने पूछा, मम्मा, आप सैर करने के लिए जा रही हो? मम्मा ने कहा, आप तो चक्कर लगा आए हो ना। मैंने कहा, लगा तो आया हूँ, मैं आपके साथ भी चलता हूँ। उस दिन मम्मा अनादरा पॉइंट तक गई। वह मम्मा के साथ मेरी अंतिम मुलाकात थी। जब हम चले तो जमुना बहन ने कहा, मम्मा को कुछ संसार समाचार सुनाओ। मैंने मम्मा से पूछा कि इस समय आप मम्मा हो और मैं बृजमोहन आपके साथ चल रहा हूँ लेकिन जब हम सतयुग में होंगे तब एक-दूसरे को कैसे पहचानेंगे? मम्मा ने कहा कि यह नाम-रूप तो बदल जाएगा लेकिन जो आत्मा जितनी समीप होगी उसको उस समीपता की अनुभूति होगी। फिर मैंने पूछा, मम्मा, गुरुवार के दिन अलग-अलग स्थानों से बाबा के पास भोग ले करके जाते हैं, तो वहाँ बाबा अलग-अलग भोग कैसे स्वीकार करता है, यह कैसे होता है? नंगल डैम में जहां सेंटर था वहां मधुबन की मोहिनी बहन रहती थी। कभी-कभी ये टुअर पर चली जाती थी, तब मुझे भोग लगाना होता था और मैंने सेमी ध्यान में जाना शुरू कर दिया था, मुझे कुछ-कुछ दिखना भी शुरू हो गया था। मैंने खुशी-खुशी आकर के बाबा को बताया तो बाबा ने कहा, नहीं, तुम को ध्यान में नहीं जाना है। फिर भी मेरे मन में कुछ प्रश्न थे। मैंने मम्मा को कहा, मम्मा, वहां संदेशी जाती है, फर्श नहीं होता, भोग कहां लगाते हैं? मम्मा मुस्कराई और बोली, ये ध्यान-दीदार की बातें हैं, बाबा केवल वासना लेता है, खाता तो है नहीं और वतन की स्पीड बहुत तेज है। जितने भी बच्चे भोग ले करके आते हैं, सबको बाबा अपना अनुभव कराता है, भोग में शक्ति भी भरता है। फिर मैंने पूछा, मम्मा, सब आत्माएं कल्प के अंत में वापस परमधाम जाएंगी, सृष्टि की सफाई होगी, यह तो हमको मालूम है लेकिन आत्माएँ धरती पर आती कैसे हैं? मम्मा ने कहा कि जब आत्मा परमधाम में होती है तो उसके सारे संस्कार मर्ज रहते हैं परंतु जब उसके धरती पर आने का समय होता है तब उसके अंदर संस्कार इमर्ज होता है। अपने-अपने संस्कार के इमर्ज होने पर नंबरवार आत्माएं नीचे आती रहती हैं। इस प्रकार, मम्मा से यह मेरी आखरी मुलाकात, यादगार मुलाकात रही। उसके बाद तो हम सब जानते हैं कि हमारी अति मीठी, अति प्यारी मातेश्वरी जगदंबा 24 जून, 1965 को अव्यक्त हो गई। ■■■

विकारों के सूक्ष्म अंश

ब्रह्माकुमारी उर्मिला, शान्तिवन

एक शहर में एक धनवान आदमी अकेला रहता था। न उसके बाल-बच्चे थे, न बीवी। वह धनी व्यक्ति स्वभाव का अच्छा नहीं था। शहर वाले सोचते थे, ये जल्दी मरे तो शहर में शान्ति हो और इसकी दौलत का उपयोग हम सब मिलकर करें। अचानक एक दिन उसकी मृत्यु हो गई, लोग बड़े खुश हो गए, मन ही मन जश्न मनाने लगे परन्तु यह क्या? उसकी मौत का समाचार फैलते ही न जाने कहाँ-कहाँ से उसके सम्बन्धी आकर खड़े हो गए! एक ने कहा, मैं मृतक का भतीजा हूँ; दूसरे ने कहा, मैं ममेरा भाई हूँ; तीसरे ने कहा, मैं रिश्ते में जमाई हूँ; चौथे ने कहा, मैं पौत्रा हूँ; पाँचवें ने कहा, मैं भानजा हूँ....। इस प्रकार उसकी दौलत के हकदारों का मजमा लग गया। शहर वालों को जिस खुशी का अहसास हुआ था वह उनके हाथों से फिसलकर काफी दूर जाती नजर आने लगी।

कौन है यह धनवान आदमी?

यह धनवान आदमी और कोई नहीं रावण है अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार हैं। रावण ने सृष्टि में पूरी अशान्ति मचा रखी है और हम सब इसे मारने में लगे हैं। हमारी बहुत रूहानी कोशिश के बाद रावण की मृत्यु हो जाती है अर्थात् पाँचों बड़े विकार हमारी जिन्दगी में दखल देना बन्द कर देते हैं परन्तु इन पाँचों के छोटे-बड़े, दूर-परे के रिश्तेदार अर्थात् विकारों के सूक्ष्म अंश अपना हक लेने के लिए हमारा सामना करते हैं और उनका विनाश करने में भी हमें कमजोर नहीं पड़ना है। आइये देखें, ये सूक्ष्म अंश कौन-कौन-से हैं –

लोभ का अंश है आवश्यकता

जीवन में लालच खत्म हो गया है, संग्रह प्रवृत्ति नहीं रही परन्तु आवश्यकताएँ अनेक प्रकार की हैं जो बार-बार सिर उठाती रहती हैं। इसकी भी आवश्यकता है, उसकी भी आवश्यकता है, आवश्यकता के नाम पर सारा दिन बुद्धि वस्तु और पदार्थों के पीछे दौड़ती रहती है परन्तु आवश्यकताएँ भी सीमाबद्ध होती हैं। यदि ये सीमा पार कर असीमित होने लगें तो लोभ का अंश हो जाता है। अत: कोई भी साधन जब बुद्धि को भटकाए तो अपने से पूछो, यदि मेरी आज तक की जिन्दगी इसके बिना शान्ति से गुजर सकती है तो आगे की क्यों नहीं? कहा गया है, -- 'सहज मिले सो दूध बराबर, माँग लिया सो पानी। खींच लिया सो खून बराबर, कह गए सन्त और ज्ञानी।।'

कोई जरूरत भी है और वो सहज रूप से पूरी भी हो रही है तो स्वीकार करो परन्तु यदि उसे पूरा करने के लिए माँगना पड़ रहा है, खींचातान करनी पड़ रही है तो वह पानी और खून के बराबर हो जाती है, दूध की तरह शुद्ध नहीं रह पाती।

आवश्यकता सीमा में है या सीमा को पार कर गई, इसे जानने के लिए हम एक उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए, पाँच फीट ऊँची चारदीवारी वाले एक आँगन में बीचोंबीच हमने एक सेब रख दिया। एक भूखा तोता चारदीवारी पर आकर बैठा, उसने सेब को देखा, उड़कर उसके पास पहुँचा, उसे चोंच मारकर खाया और पेट भरने पर उड़ गया। भूख मिटाना आवश्यकता है और यह सहज ही पूरी भी हो गई। अगले दिन हमने एक सेब खुले में रखा और दूसरे सेब को एक पिंजरे में डालकर वहीं पर रख दिया। भूखा तोता आया, सेब को देखा, उड़कर उसके पास

आया, उसे खाया, पेट भर गया, अब उसे उड़ जाना चाहिए परन्तु वह नहीं उड़ा। पास रखे पिंजरे के अन्दर पड़े सेब को वह घूर-घूर कर देख रहा है। पिंजरे के चारों ओर फुदक रहा है, पिंजरे की सलाखों पर चोंच मार रहा है। आवश्यकता पूरी होने के बाद भी तोते का यह लालच उसे मुसीबत में डाल सकता है, वह बिल्ली या कुत्ते द्वारा या किसी मनुष्य द्वारा पकड़ा या मारा या बन्दी बनाया जा सकता है।

हम भी यदि पेट भरने के बाद भी खाद्य पदार्थों को ललचाई नजरों से देखते हैं या खा लेते हैं; वस्त्र होते हुए भी और-और भी नए-नए प्रकार के वस्त्रों पर आकर्षित होते हैं; मकान होते भी, दूसरों के भव्य मकानों पर आकृष्ट होते हैं या ऊपर से चमकदार और अन्दर से खोखले सांसारिक साधनों की मात्र इन्द्रियों की तुष्टि के लिए कामना करते हैं तो यह भी आवश्यकताओं की सीमा को पार करना है। इस में अपार दुख है। इसमें अपनी ही आहत भावनाओं की मार है जैसे कभी तुलना, कभी हीन भावना, कभी अभिमान आदि-आदि। आत्मस्वरूप और स्वमान में टिककर जीवन चलाएँ तो अपार सुख है।

क्रोध का अंश है घृणा

क्रोध रूपी महाविकार को जीत लेने के बाद कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी आत्मा को देखने से, उसके सम्पर्क में आने से मानसिक अवस्था में हलचल होने लगती है, ज्ञान स्वरूप स्थिति डगमगाने लगती है। तब उस आत्मा से किनारा करने की कोशिश करते हैं। सोचते हैं, अपनी अवस्था को खराब करें, इससे तो किनारा करना अच्छा है। लेकिन, यह भी घृणा अथवा क्रोध का ही अंश है। क्रोध अग्नि है तो सूक्ष्म घृणा भी अग्नि के समान है, यह भी आत्मा को जलाती है। देह से न्यारा बनना, यह ठीक है परन्तु किनारा करना, यह और चीज है। इसमें 'यह तो ऐसा है, यह तो बदलना ही नहीं है' इस प्रकार का सूक्ष्म श्रापित करने वाला घृणा भाव समाया है। स्वयं को सुरक्षित रखो परन्तु उस आत्मा को प्रमाण-पत्र मत दो कि वह ऐसा है। घृणा भाव रखकर अर्थात् दूसरे को गिराकर, अपने को बचाने का प्रयास मत करो। खुद को भी बचाओ, दूसरों को भी बचाओ। विशेषता देखते हुए श्रेष्ठ भावना और श्रेष्ठ कामना रखो। विशेष आत्मा बनो। नहीं तो ये छोटी-छोटी बातें, जाल बुनकर आत्मा को उसमें फँसा लेती हैं। एक है दिलशिकस्त (निराशा) का जाल, दूसरा है अलबेलेपन (लापरवाही, पुरुषार्थ में ढील) का जाल।

अहंकार का अंश है मेरापन

अपनी विशेषता, गुण, हूनर, योग्यता को मेरा मानना भी सूक्ष्म अहंकार है। यदि जीवन परमात्मा का उपहार है तो उसकी हर विधा भी परमात्मा की देन है। यदि उसमें मेरापन रखेंगे तो मन में आएगा, मेरी विशेषता से काम क्यों नहीं लिया जाता, मेरी विशेषता को जानते ही नहीं हैं। 'मेरी' कहना ही वर्री (Worry - चिन्ता) को आमन्त्रण देना है। हर्री, वर्री और कर्री – इन तीनों से सदा सुरक्षित रहना है।

हर्री(Hurry) माना जल्दबाजी। चिकित्सक कहते हैं, हृदयरोग के साथ-साथ अन्य बहुत-से रोगों का कारण जल्दबाजी है। हम हर चीज समय से पहले अपनी मुट्ठी में देखना चाहते हैं तो रोग भी समय से पहले हमें अपनी मुट्ठी में कर लेते हैं। कवि ने ठीक ही कहा है,

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सबकुछ होय।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल देय।।

भावार्थ है कि कितनी भी सिंचाई कर लें, फल या फसल तो समय पर ही पकेगी।

वर्री (Worry) माना चिन्ता। कबीरदास जी ने कहा है,

चिन्ता से चतुराई घटे, गम से घटे शरीर।
पाप किए लक्ष्मी घटे, कह गए सन्त कबीर।।

भावार्थ है कि चिन्ता से मानव की चतुराई अर्थात् निर्णयशक्ति, परखने की शक्ति आदि नष्ट हो जाती हैं। चिन्ता मनुष्य पर हावी होकर उसे अपना गुलाम बना लेती है। फिर वह सारे काम छोड़कर केवल चिन्ता के चरण पकड़े रहता है। भगवान कहते हैं, 'जहाँ कोई भी मुश्किल अनुभव होती है, वहाँ उसी स्थान पर बाप (परमात्मा पिता) को रख दो। बोझ अपने ऊपर रखते हो तो मेहनत लगती है। बाप पर रख दो तो बाप खत्म कर देंगे। जैसे सागर में किचड़ा डालते हो तो वह अपने में नहीं रखता, किनारे कर देता है, ऐसे बाप भी बोझ को खत्म कर देते हैं। अब शुभचिंतन करो, मनन शक्ति बढ़ाओ, मेहनत मजदूर करते, आप तो अधिकारी हो।'

कर्री(Curry) माना तरकारी। बहुत मिर्च-मसाले वाला भोजन शरीर और मन दोनों के लिए हानिकारक है। अत: भोजन भी साधना में सहयोगी हो, बाधक न हो।

मोह का अंश 'अच्छा लगता है"

मोह विकार का सूक्ष्म अंश है, यह वस्तु मुझे अच्छी लगती है, मोह नहीं है लेकिन अच्छी लगती है। भगवान कहते हैं, अच्छा लगे तो सब अच्छा लगे, चत्तियों वाले कपड़े भी अच्छे और बढ़िया कपड़े भी अच्छे। छत्तीस प्रकार के व्यंजन भी अच्छे और सूखी रोटी और गुड़ भी अच्छा। हर वस्तु अच्छी, हर व्यक्ति अच्छा। शरीर की सेहत के अनुसार कोई पदार्थ या दवा प्रयोग करें वह ठीक है परन्तु यही खाद्य अच्छा लगता है, यह उस खाद्य में मोह है। अच्छा लगना अर्थात् आकर्षण जाना। खाएँ, पीएँ, मौज करें लेकिन शरीर के भान से न्यारे बनकर और पिता परमात्मा के साथ-साथ, अकेले नहीं। परमात्मा के साथ रहेंगे तो मर्यादा की लकीर के अन्दर रहेंगे, जहाँ रावण का अंश आ नहीं सकता।

काम विकार का अंश है 'अतिरिक्त स्नेह"

काम विकार को जीत लिया, सदा ब्रह्मचारी हैं लेकिन किसी आत्मा के प्रति विशेष झुकाव है जिसका सूक्ष्म रूप स्नेह है। स्नेह तो अच्छा है परन्तु अतिरिक्त स्नेह काम का अंश है। ऊँचे से ऊँचे पिता परमात्मा की सन्तान, सबको अपने सामने झुकाने वाली, स्वयं किसी की ओर झुकाव कैसे कर सकती है! किसी से अतिरिक्त स्नेह के कई कारण हो सकते हैं। 1.सेवा में सहयोगी, 2.सेवा में वृद्धि के निमित्त, 3.विशेष गुण, 4.विशेष संस्कार मिलन और 5.अतिरिक्त मदद। इन कारणों से विशेष झुकाव, सूक्ष्म लगाव का रूप बन जाता है। उस समय आत्मा पर प्रभावित होकर यह भूल जाते हैं कि पिता परमात्मा ने इसे ऐसा अच्छा बनाया है। बुद्धि का झुकाव जिधर होता है, मन उसे सहारा मान लेता है। फिर परिस्थिति आने पर परमात्मा के बजाए उसी सहारे की याद आती है। दो-चार मिनट भी ऐसे सहारे में मन लगा तो परमात्मा से याद का तार टूट जाता है जिसे जोड़ने के लिए फिर बहुत मेहनत लगती है।

इससे बात करना अच्छा लगता है, इससे बैठना अच्छा लगता है, 'इसी से ही' माना दाल में काला है, ऐसी सोच से हीनता आ जाती है। विशेषता देखो, गुण देखो लेकिन इसी का ही यह गुण बहुत अच्छा है, यह 'ही' बीच में नहीं लाओ। इसी से 'ही' योग करना है, यह 'ही' शब्द नहीं आना चाहिए। पहले थोड़ा होता है फिर बढ़ते-बढ़ते विकराल हो जाता है, फिर खुद भी इससे निकलना चाहें तो निकल नहीं सकते हैं क्योंकि पक्का धागा हो जाता है, टूटना मुश्किल हो जाता है। अत: याद रहे, सहारा एक पिता परमात्मा है, कोई मनुष्यात्मा सहारा नहीं है। परमात्मा बाप की याद जहाँ होगी वहाँ सहारा ही सहारा है।

विकारों के उपरोक्त सभी अंशों को विदाई देने पर ही परमात्मा पिता, प्रकृति और सर्व मनुष्यात्माओं की तरफ से सच्ची, अविनाशी बधाई प्राप्त होगी। ■■■

प्रकृति के प्रकोप, पाप और श्राप से मुक्त होने के लिए

आध्यात्मिक जागृति आवश्यक

■■■ ब्रह्माकुमार मृत्युंजय, कार्यकारी सचिव, ब्रह्माकुमारीज़

इस समय सारा मानवकुल एक घोर वैश्विक संकट की घड़ी से गुजर रहा है। अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, देश-विदेश, धर्म-समुदाय के भेदभाव के बिना कोरोना वायरस की बीमारी के कारण मृत्यु का तांडव नृत्य हो रहा है। नई बीमारी होने के कारण अभी तक इसकी कोई भी सटीक दवा या इंजेक्शन उपलब्ध नहीं है। हाँलाकि कोरोना के कहर से मानवता को बचाने के लिए विश्वभर के हजारों वैज्ञानिक इसके इलाज की खोज करने में जुटे हुए हैं। धरती पर भगवान का दूसरा रूप धारण कर डॉक्टर्स और नर्सेज अपनी जान को जोखिम में डालकर कोरोना संक्रमित रोगियों की चिकित्सा और सेवा में निरन्तर तत्पर हैं। उनके सुस्वास्थ्य एवम् दीर्घायु के लिए शुभ कामना करते हैं।

ऐसे समय पर देश के लोकप्रिय प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द मोदी जी, लोगों में हिम्मत और विश्वास भरने के प्रयास में सफल हो रहे हैं। उनकी प्रशंसा विश्वभर में हो रही है। हमारा कर्तव्य बनता है कि उनके हर आदेश का पालन कर, उनके हाथ मजबूत करें और स्वयं, देश और पूरी मानवता को बचाने के कार्य में योद्धा बनें।

एक दूसरे से दूरी-जीवन के लिए जरूरी

मनुष्य से, मनुष्य के सम्पर्क में आने से फैलने वाली इस महामारी की रोकथाम के लिए सभी देशों के राष्ट्राध्यक्ष, प्रधानमन्त्री, मन्त्री परिषद् एवम् प्रशासनिक अधिकारी 'लॉक डाउन' के माध्यम से एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य से दूर रहने (सोश्यल डिस्टेन्स) की रणनीति बनाकर नई सार्थक पहल कर रहे हैं । लोगों को कोरोना वायरस के लक्षण और उसके फैलने की सम्भावित विधियों के बारे में जन-संचार माध्यमों के द्वारा जागरुक किया जा रहा है।

भारत में पहली बार घोषित हुए 'लॉक डाउन' को लागू करने के लिए पुलिस प्रशासन रात-दिन अपनी जान को खतरे में डालकर सेवा में लगे हुए हैं। उनकी सेवाओं के प्रति सेल्यूट करते हैं, उनकी सुरक्षा एवम् सुस्वास्थ्य के लिए भगवान से प्रार्थना करते हैं और विश्वास दिलाते है कि हम सभी आपके साथ हैं।

हमारा समाज एक नये सामाजिक जीवन के अनुभवों से गुजर रहा है। न्यायालय, विद्यालय और कार्यालय सहित सभी व्यापारिक संस्थान बन्द हैं। यातायात के साधनों जैसे ट्रेनों, बसों, एरोप्लेन इत्यादि को भी कुछ समय के लिए स्थगित कर दिया गया है। इस महामारी से लोगों को बचाने के लिए निर्माण कार्य सहित प्राय: विकास की सभी गतिविधियां एक साथ रोक दी गई हैं।

धार्मिक भावनाओं पर नियन्त्रण आवश्यक

धार्मिक, वैचारिक पृष्ठभूमि के दृष्टिकोण से भारत एक अत्यन्त संवेदनशील राष्ट्र है। धार्मिक समारोहों और उत्सवों के नाम पर यहाँ हजारों-लाखों लोग बड़ी आसानी से इकट्ठे हो जाते हैं। बहुत-सी सामाजिक, धार्मिक और आध्यात्मिक संस्थायें भी इस महामारी की चपेट में आई हैं, साथ-साथ सावधानी भी रख रही हैं। इस बीमारी का कारण अदृश्य है परन्तु परिणाम अत्यन्त भयावह है। द्वितीय विश्वयुद्ध से भी अधिक भयानक दृश्य उत्पन्न हो गया है। समस्त मानव जाति के लिए महाविनाशकारी इस बीमारी को हराना, वर्तमान समय की सबसे बड़ी चुनौती है।

मनुष्य अपने कुल का विनाश करने के लिए स्वयं जिम्मेदार

इस बीमारी का मूल कारण मेरी दृष्टि में मनुष्य की अनियन्त्रित लोभ एवं भोगवृत्ति है। इसके कारण वह लम्बे समय से प्रकृति, पर्यावरण तथा मूक पशु-

पक्षियों पर क्रूरता और हिंसा करता चला आ रहा है। उनके दु:ख के वायब्रेशन से यह प्रकृति कुपित लग रही है। भले ही सभी धर्मों में जीवों पर दया करने का और अहिंसा का उपदेश दिया गया है। इसके बावजूद, प्राणियों पर हिंसा की मौन स्वीकृति, प्रकृति को भी विचलित करती है। धर्म का दुरूपयोग करके स्वार्थ और स्वाद के नाम पर जीवों को हिंसा का लम्बे समय से शिकार बनाया जाता रहा है। बुद्धिजीवी मनुष्यों द्वारा जानवरों पर हिंसा को कानूनी मान्यता देकर सहमति प्रदान की गई है। इस समय मनुष्य स्वयं मृत्यु की आहट सुनकर भयभीत एवं चिन्ताग्रस्त है।

स्वार्थ-लोभ के वशीभूत मनुष्य ने हवा-पानी-धरती से लेकर आसमान तक को प्रदूषित करके, उसके मूलस्वरूप को खतरे में डाल दिया है। अपने मूल धर्म शान्ति, प्रेम, सद्भावना, समरसता इत्यादि को भूलकर, देह अभिमान और अहंकार के वशीभूत होकर हिंसा की प्रवृत्ति के कारण जीवों का भक्षण करना मानव ने जैसे अपना अधिकार समझ लिया है। इस समय मनुष्य असहाय बनकर इस बीमारी से मुक्त होने के लिए प्रार्थना और उपाय खोज रहा है। आज हालत यह हो गई है कि मनुष्य अपने घर में ही एक कैदी बन गया है। एक दूसरे से दूरी रखना समय के अनुसार समझदारी और मजबूरी दोनों बन गई हैं। श्मशान घाट में जाकर अन्तिम संस्कार करने में भी मनुष्य भयभीत है। इस हालात के लिए मनुष्य स्वयं ही जिम्मेदार है।

प्रकृति का प्रकोप और श्राप

इन सभी दृश्यों को देखकर ऐसा लगता है कि आज का मनुष्य प्रकृति के प्रकोप और श्राप का शिकार हो रहा है। यह बीमारी शारीरिक के साथ-साथ एक सामाजिक बीमारी भी है। फिलहाल इस से बचने का अभी कोई समाधान दिखाई नहीं दे रहा है। ऐसा लगता है कि मनुष्य के कर्मभोग और पापों के प्रायश्चित का अब समय आ गया है। मूक पशुओं, जानवरों, पक्षियों और प्रकृति के दु:ख के सूक्ष्म वायब्रेशन द्वारा मनुष्य को कर्मों की सजा और दु:ख का अनुभव हो रहा है। यह दु:ख प्रकृति, पशु, पक्षियों एवं जलचर प्राणियों के श्राप के कारण ही उत्पन्न हुआ है।

आध्यात्मिक जागृति आवश्यक

ऋषि-मनीषियों एवं ईश्वरीय शिक्षाओं का उल्लंघन कर, देह अभिमान और स्वार्थवश मनुष्य बहुत पापकर्म कर रहा है। मनुष्य बुद्धि इस समय धूर्तबुद्धि, शोषणबुद्धि, पत्थरबुद्धि, हिंसकबुद्धि, विनाशकारी बुद्धि एवं बन्दरबुद्धि बन गई है। वास्तव में, मनुष्य को होना चाहिए दिव्यबुद्धि, पवित्रबुद्धि, कल्याणकारी बुद्धि, दयालु एवं प्रेमबुद्धि वाला । परन्तु मानव के दिव्य गुण केवल किताबी पन्नों में सिमटकर रह गये हैं, उसके आचरण और विचार से पूरी तरह गायब हो गये हैं। गीता में सत्धर्म की स्थापना के लिए स्पष्ट परमात्म-संदेश है जिसमें कहा गया है – 'अति धर्मग्लानि के समय मैं दिव्य रूप से अवतरित होकर, मनुष्यों को ईश्वरीय ज्ञान और राजयोग की शिक्षा देकर, मुक्ति और जीवनमुक्ति का वर्सा दूँगा।' उपर्युक्त ईश्वरीय संकल्प के अनुसार, वर्तमान समय में परमात्मा पिता ईश्वरीय शिक्षा देकर, कर्म-अकर्म-विकर्म के गुह्य रहस्य सिखाकर, आत्माओं का दिव्य नेत्र खोलकर उन्हें आत्म-अभिमानी, अशरीरी, अव्यक्त तथा सूक्ष्म स्थिति को धारण कराने के लिए राजयोग मेडिटेशन का अभ्यास करा रहे हैं। इससे भयमुक्त, पापमुक्त और दु:खमुक्त जीवन जीने की कला स्वत: प्राप्त हो जाती है।

सभी मनुष्यात्माओं को ईश्वरीय शिक्षा तथा राजयोग मेडिटेशन सीखने के लिए ब्रह्माकुमारीज़ ईश्वरीय विश्व विद्यालय में हार्दिक ईश्वरीय निमन्त्रण है। आप वर्तमान समय के अनुसार, ब्रह्माकुमारीज़ की वेबसाइट : www.brahmakumaris.com पर जाकर, इस सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करके अपने जीवन को भयमुक्त, रोगमुक्त, चिन्तामुक्त, सुखमय एवं शान्तिमय बना सकते हैं। यही हमारी सर्व के प्रति शुभ कामना है। यही समय की पुकार है। ■■■

अंतर्मन का नया सॉफ्टवेयर

■■■ ब्रह्माकुमारी गीता बहन, वरिष्ठ राजयोग शिक्षिका, शान्तिवन

हम समय के उस दौर से गुजर रहे हैं जब हमारे आसपास का संसार बहुत तेजी से बदल रहा है और व्यक्ति स्वयं भी भीतर से बदल रहा है।

पुराने सॉफ्टवेयर के साथ जी रहे हैं जिन्दगी

मोबाइल एप्लीकेशन और कम्प्यूटर के सॉफ्टवेयर का नया संस्करण (वर्जन – Version) बाजार में आता ही रहता है। हम सभी भी वह बदलने के लिए तत्पर भी रहते हैं क्योंकि हम परिवर्तन न करें तो आउट डेटेड हो जाते हैं लेकिन आश्चर्य की बात है कि हम सोलह वर्ष की आयु से, पूर्वजन्मों के हिसाब-किताब, रूढ़िगत मान्यताएँ, संस्कार, विचार तथा वर्तमान शिक्षा, सोशल मीडिया के प्रभाव से जो विकृतियाँ स्वयं में आई – ऐसे पुराने सॉफ्टवेयर से ही जिंदगी को देखते, जीते और उस अनुसार ही व्यवहार करते हैं।

अन्दर परिवर्तन हुआ या नहीं, यह हिसाब देखना जरूरी

वास्तव में तो हमें खुद में बरसों पुराने आचार-विचार, वृत्ति-व्यवहार में परिवर्तन आया या नहीं, उसका हिसाब देखना चाहिए। सोचने की बात है कि क्या हमें अपने अन्दर के सॉफ्टवेयर को अपडेट करना नहीं चाहिए? जब हम पढ़ते हैं तब क्या एक ही कक्षा में पढ़ते रहते हैं या आगे बढ़ते जाते हैं? हमारी हर डिग्री का मूल्यांकन होता है न? एक ही एक अभ्यासक्रम हम पढ़ते रहते हैं या नये-नये विषयों के गहरे ज्ञान के साथ उच्च डिग्री प्राप्त करते जाते हैं? जो कुछ पढ़ते हैं, सीखते हैं उसे नौकरी, धंधा या शोध कार्य में उपयोग करते हुए स्वयं को भी घड़ते हैं और समाज-देश के नवनिर्माण में योगदान देते रहते हैं न? या फिर आजीवन अभ्यास करते रहते हैं या रट्टा लगाते रहते हैं?

कथा-कहानियों से केवल मनोरंजन या उन पर आचरण भी

लेकिन आत्मकल्याण या स्वउन्नति के संदर्भ में अपने प्रयासों को देखें तो हम बाह्यजीवन-व्यवहारिक जीवन में जो करते हैं, उससे विपरीत ही करते हैं – वो ही कथा-कहानियाँ ही सुनते रहते हैं। शास्त्रों, ग्रंथों, पुराणों, आत्मकथाओं के सिर्फ विचार यज्ञ ही जारी रखते हैं। जीवन को नयी दिशा देने और वास्तविक जगत के अनुरूप योजना बनाकर जीवन को सफल करने के लिए चिंतन नहीं करते हैं। अब हम गीता, रामायण, भागवत, महाभारत या जीवनचरित्रों के सार को तो समझ ही गये हैं न? तो फिर इस प्रकार के सत्संग को जीवन भर पुनरावृत्त करके मनोरंजन ही करते रहेंगे या उस अनुसार आचरण कर, जीवन को श्रेष्ठ-शुद्ध बनाते हुए आगे भी बढ़ेंगे? ऐसे सत्संग के आधार पर जो ज्ञान प्रकाश, सद्विवेक हमने प्राप्त किया है उसे पुनरावृत्त करते रहने के बजाय जीवन में कुछ ठोस उर्ध्वगामी परिवर्तन कर उच्चता पाना भी तो जरूरी है। अगर ज्ञान क्रियाकांड से आगे बढ़कर आचरण-स्वरूप धारण न करता हो तो सिर्फ विद्वता या पांडित्य कोई काम का नहीं रहता। सद्ज्ञान के अनुरूप जीवन जीते हुए हमें अपने सर्व कर्त्तव्य अदा करने हैं। ज्ञान जानते हुए भी अकर्त्तव्य करते रहेंगे या भूलें करते रहेंगे तो अनेक दुखद परिणाम हमें ही भोगने पड़ेंगे।

गौरव-गाथाओं से सबक सीखें

यहाँ हमें आत्ममंथन या स्वदर्शन करने की आवश्यकता है। जैसे कहानी है कि नलके पर बैठे रोज-रोज भीगते हुए तोते को मालिक ने कहा कि मीठूराम नलके पर नहीं बैठना और वह तोता मालिक

की सीख को रटता भी रहा और नलके पर बैठकर भीगता भी रहता, काँपता भी रहा – अब ये तो निरर्थकता ही हुई न! ऐसे ही हम भी करते हैं। जरूरी तो ये है कि भूतकाल की गौरव गाथाओं से सही सबक सीखकर, योग्य जीवन जीना सीखते जायें।

प्रकृति जगत प्रदूषण मुक्त बने, यह जरूरी है परन्तु हमारा आंतरिक जीवन प्रदूषण मुक्त बने – वह भी जरूरी है। यह कार्य हमें स्वयं ही करना होगा और जल्दी ही करना होगा। शरीर हार्डवेयर है और चैतन्य शक्ति आत्मा सॉफ्टवेयर है। शरीर रूपी हार्डवेयर तो हर जन्म हम बदलते रहते हैं। नया जन्मा हुआ शरीर, समय और प्रकृति के संसर्ग में आते-आते पुराना होता जाता है और नष्ट हो जाता है। फिर हम नया शरीर धारण करते हैं। ये कुदरती क्रम बना हुआ है।

विकृत संस्कारों रूपी पुराना सॉफ्टवेयर

चैतन्य शक्ति अपने अनादि स्वरूप में शुद्ध, सत्य, पवित्र है। इस सृष्टि खेल में जब हम परमधाम से आते हैं तब भी हम अपनी सतोप्रधान स्थिति में होते हैं। परन्तु समय और प्रकृति के प्रभाव में आकर हम आत्म-विस्मृत होते हैं और परमात्मा से वियोगी हो जाते हैं। इससे आत्मा रूपी सॉफ्टवेयर पर अज्ञान, मिथ्याज्ञान, अपूर्ण ज्ञान का आवरण आने लगता है जो विकार, अवगुण, बुराइयों, कमजोरियों के रूप में पनपने लगता है। आज हम उसी विकृत, अपूर्ण संस्कारों रूपी सॉफ्टवेयर से ही कर्म कर रहे हैं। परिणामस्वरूप सम्बन्धों में, परिवार में, समाज-व्यवस्थाओं में, कार्य-क्षेत्रों में शासन-प्रशासन में और लगभग सभी स्तरों पर हम अराजकता, अव्यवस्था का अनुभव कर रहे हैं। इसका परिणाम बहुत स्पष्ट रूप से हम सबके सामने दुख, अशान्ति, व्यग्रता, निराशा, तनाव के रूप में आ रहा है। मानव जीवन बोझ-जंजाल बनता जा रहा है।

खैर, अब एक-दो पर कीचड़ उछालने से काम बनेगा नहीं, और ही हमारा विश्व-आंगन गंदा और विकृत बन जायेगा। मुसीबत की बात तो यह है कि हम दुखी-व्यथित होकर कराह रहे हैं परंतु स्वपरिवर्तन करने के लिए तैयार भी नहीं हैं।

परमात्मा पिता ले आए हैं नया सॉफ्टवेयर

यथार्थ तो यह है कि हमें इस पुराने विकृत सॉफ्टवेयर अर्थात् आत्मा में निहित अज्ञानता, असत्य विचारों, भावों, कर्मों और संस्कारों से वैराग्य आना चाहिए और उनका समझपूर्वक एक धक से त्याग कर देना चाहिए। अब स्वयं परमात्मा सत्य ज्ञान और राजयोग के द्वारा सद्गुणों का, दिव्य शक्तियों का नया सॉफ्टवेयर अर्थात् नया संस्करण (Version – वर्जन) लेकर आये हैं और अपने निमित्त माध्यम प्रजापिता ब्रह्मा द्वारा तथा उनकी आध्यात्मिक रचना – ब्रह्माकुमारियाँ और ब्रह्माकुमारों के द्वारा नि:शुल्क रूप से दे रहे हैं। हर कोई ले सके, ऐसी सहज स्कीम उन्होंने बनाई है और वो है – 'पुराना, पतित-भ्रष्ट सॉफ्टवेयर दे दे और दिव्य, पवित्र-श्रेष्ठ सॉफ्टवेयर ले ले।'

निश्चित समयावधि में धारण कर लें नया सॉफ्टवेयर

समय बहुत तेजी से बदल रहा है। संसार अति के अंत की साक्षी बनते हुए, सत्य और श्रेष्ठ की इति की ओर बढ़ रहा है। एक ओर विज्ञान सब कुछ विशुद्ध, गुणवत्तापूर्ण, सूक्ष्म और सुगठित बना रहा है, दूसरी ओर, परमात्मा का सत्य ज्ञान भी हमें (चैतन्यशक्ति आत्मा को) विशुद्ध, सतोप्रधान बना रहा है। परमात्म प्रदत्त शुद्ध सॉफ्टवेयर अपनाने से पुराना, कलियुगी, भ्रष्ट अपने आप डिलिट होता जाता है। परन्तु एक और ध्यान रखने की बात कहो या शर्त कहो वो यह है कि यह कार्य निश्चित समयावधि के अंतर्गत करना है। सृष्टि परिवर्तन के पहले अगर हम स्वयं को परिवर्तन करेंगे अर्थात् मन, वचन, कर्म में परमात्मा पिता का दिया हुआ दिव्य सॉफ्टवेयर धारण कर लेंगे तो महापरिवर्तन के सूत्रधार भी बन सकेंगे।

तो चलिये, सोचते न रहिए। जल्दी से खुद पर गौर करिए। हिम्मत हमारी, हजार गुणा मदद परमात्मा की और उर्ध्व की ओर बदलते समय की। ■■■

सज़ा या मज़ा

■■■ ब्रह्माकुमार सन्तोष, शान्तिवन

एक गीत बचपन से सुनता आया हूँ, वक्त से दिन और रात... वक्त से कल और आज... वक्त का हर सह गुलाम... वक्त का हर सह पे राज...। इस गीत को साकार होते देखा। यूँ तो बहुत-सी प्राकृतिक आपदायें इस जीवन में देखीं और लोगों के मन में उनका भय भी महसूस किया है। अपने कई मित्रों और सम्बन्धियों को भी बीमारी से मरते देखा है परन्तु यह दृश्य अनोखा था। चारों ओर मौत-सा सन्नाटा। हर दिल में खौफ और ज़ुबां पे उस ईश्वर का नाम देखा। ईश्वर का नाम लेने वाले भी कई तरह के लोग देखे। कोई सबकी कुशलता और सुरक्षा के लिये ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था तो कोई अपने व अपने परिवार के लिये। कोई-कोई तो ईश्वर को ही उसका कर्त्तव्य याद करा रहे थे।

मुझे एक कहानी याद आई – एक गाँव में एक बार बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हुई। ऐलान कराया गया कि बाढ़ आने वाली है इसलिए गाँव को खाली किया जाये। सभी गाँव वाले, गाँव खाली करके उँची जगह चले गए परन्तु एक पुजारी नहीं गया। सभी ने उसे बहुत समझाया पर वो नहीं माना। अंत में सरपंच ने उससे विनम्र निवेदन किया कि आप चलो, नहीं तो आपकी जान को खतरा हो सकता है परन्तु वो फिर भी नहीं माना और मुस्कराकर बोला, मुझे अपने प्रभु पर सम्पूर्ण विश्वास है, वो मेरी रक्षा करेंगे।

बाढ़ का पानी बढ़ने लगा तो पुजारी मकान की छत पर चढ़ गया। तब कुछ लोग नाव लेकर उसे बचाने के लिए आये परन्तु पुजारी ने ये कह कर उन्हें भी वापस भेज दिया कि मुझे मेरे ईश्वर पर भरोसा है। बाढ़ का पानी और बढ़ा। पानी छत के ऊपर तक आ गया। तब मिलेट्री वाले उसे हेलिकाप्टर से लेने आये परन्तु पुजारी ने वही बात दोहराई और उनके साथ जाने से भी मना कर दिया। अतंत: बाढ़ का पानी और बढ़ा और पुजारी को बहा कर ले गया। पुजारी मर गया।

मरने के बाद पुजारी ईश्वर के पास गया तब उसने ईश्वर से अपनी नाराजगी जताई कि आपने मेरे भरोसे को तोड़ दिया है प्रभु। मुझे पूरा यकीन था कि आप मुझे अवश्य बचाने आयेंगे परन्तु आप आये नहीं।

मुस्कराकर प्रभु बोले, मैं कई बार आया तुम्हारे पास। पहले गाँव वालों के माध्यम से मैंने अपनी बात तुम तक पहुँचाई, फिर सरपंच और फिर नाव भेजी। अंत में हेलिकाप्टर भी भेजा परन्तु तुम अपनी अज्ञानता की जिद्द में अड़े रहे। ऐसे में मैं भला क्या करता!

सावधानी आवश्यक है

ऐसे कई मंदबुद्धि कहूँ या नादान या फिर नासमझ भी थे जिन्होंने इस बीमारी को और बढ़ा दिया। अपनी सुरक्षा के लिए सावधान रहना हमारा कर्त्तव्य है। ईश्वर साथ है, इसमें कोई दो मत नहीं है परन्तु वही ईश्वर आपको अपनी सुरक्षा के लिए सतर्क रहने को भी कहता है। सर्तक रह कर अपने कर्त्तव्यों का पालन करना भी ईश्वर की अराधना करना है। जहाँ विज्ञान इस समस्या का समाधान खोजने में लगा है, ऐसे में अपनी, अपनों की तथा समाज की सुरक्षा करना हमारा दायित्व बनता है।

लॉक डॉउन

सबको हिला के रख दिया 50 दिन के लॉकडॉउन ने । लोगों की अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएं देखने को

मिलीं। मेरे कई दोस्त, जिन्हें हमेशा शिकायत रहती थी कि कब काम-काज से छुट्टी मिले तो कुछ समय परिवार के साथ बिताएँ। आज जब उन्हें ये अवसर मिला तो वे परेशान हैं कि सारा दिन घर में बैठे-बैठे थक गये हैं, बोर हो गये हैं, पूरा दिन घर में बिताना बहुत ही मुश्किल काम है ..आदि। जो कहते थे, मरने तक की फुर्सत नहीं है, आज मरने के डर से फुर्सत में बैठे हैं। कुछ मेरे मित्र, जो अकेले हैं, वो तो और ही ज्यादा परेशान हो गये हैं। एक-एक दिन उन्हें वर्षों-सा लग रहा है। वहीं मेरे कुछ मित्र हैं जो इस एकांत का आनन्द ले रहे हैं। अब आपको कैसा लगा, ये मैं नहीं जानता परन्तु आप अपने आप से ही पूछें कि ये सज़ा है या मज़ा।

अकेलेपन से महान लेखक टालस्टाय की एक कहानी 'शर्त' याद आई। इस कहानी में एक मित्र दूसरे मित्र के सामने एक शर्त रखता है। शर्त के मुताबिक यदि उसने एक माह बिना किसी से बात किये, बिना किसी से मिले, एकांत में, एक कमरे में बिता दिया तो वो उसे 10 लाख नकद इनाम देगा और यदि उसने इस 1 माह के अन्दर कोई भी नियम तोड़ा तो वो हार जायेगा और उसे कुछ भी नहीं मिलेगा। यदि उसे इस बीच कोई समस्या हुई और वो बाहर आना चाहता हो तो घंटी बजा कर संकेत करे और चला जाये। शर्त के मुताबिक उसे कुछ नहीं मिलेगा।

पहला मित्र यह शर्त स्वीकार कर लेता है। कुछ किताबें और भोजन की थोड़ी सामग्री लेकर एक कमरे में रहने चला जाता है। कुछ दिन तो उसके किताबों को पढ़ने और भोजन बनाने आदि में गुजर गये परन्तु धीरे-धीरे उसे अकेलापन अब बर्दाश्त नहीं हो रहा था। उसका मन किया कि घंटी बजा कर हार मान ले परन्तु शर्त को ध्यान में रखते हुए एवं मिलने वाली इनाम की रकम का ख्याल कर अपने को समझा रहा था। कुछ दिनों के बाद उसे अब अकेलापन अच्छा लगने लगा। एकांत में वह बहुत ही शान्ति की अनुभूति करने लगा और आत्मचिन्तन करने लगा।

इधर इसके दिन एकांत की शान्त अनुभूति में सहर्ष बीतने लगे और उधर उसका दोस्त परेशान हो गया कि अगर इसने 1 माह अकेले पूरा कर लिया तो मुझे अपने वादे के अनुसार 10 लाख रुपये देने पड़ेंगे। वो दुविधा में पड़ गया और उसने एक खतरनाक फैसला लिया कि वो अपने दोस्त को जान से मार देगा। अगर वो मर जायेगा तो उसे रुपये नहीं देने पड़ेंगे। मन में शैतानी विचार लिये वो शर्त की समाप्ति के निर्धारित दिन वहाँ पहुँचा।

परन्तु वहाँ पहुंच कर उसे आश्चर्य हुआ कि उसका दोस्त शर्त की समाप्ति के निर्धारित दिन से एक दिन पहले ही वहाँ से जा चुका था और उसने उसके नाम एक पत्र छोड़ा था, जिसमें लिखा था, प्यारे दोस्त, मैं दिल से तुम्हारा शुक्रगुजार हूँ क्योंकि इस एक माह में मैंने वो खजाना पाया है जो अनमोल है। इसके लिये मैं हमेशा तुम्हारा आभारी रहूँगा। एकांत में रह कर मैंने असीम शान्ति और सुख की अनुभूति की और मेरी समझ में अब आ गया है कि हमारी ज़रूरतें जितनी कम होंगी उतनी अधिक शान्ति की अनुभूति होगी। मैंने परमात्मा के असीम प्रेम और अपार शान्ति को पाया है इसलिए मैं अपनी ओर से शर्त को तोड़ रहा हूँ। अब मुझे तुम्हारे पैसों की आवश्यकता नहीं है। अपना ध्यान रखना। ईश्वर तुम्हारा मंगल करें।

अकेलापन और एकांत

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। लोगों से मिलना-जुलना, बातें करना, साथ रहना -- ये मानव जीवन का एक हिस्सा है या यूं कहें कि मनुष्य की फ़ितरत भी है और ज़रूरत भी। अकेला रहना उसके लिये एक सज़ा है। यही वजह है कि जेलों में कैदी को सज़ा के तौर पर अकेला रखा जाता है। दिमागी तौर पर बीमार लोगों को ज़ंजीरों से बांधकर अकेले रखा जाता है। घर में यदि कोई अकेला रहने लगे तो उसे हम किसी मनोवैज्ञानिक

को दिखाते हैं। अकेला रहना मज़ा है या सज़ा, इस विषय पर अनेक विचारकों की अलग-अलग राय है।

ब्रिटिश के एक लेखक के अनुसार, अकेलापन डायबिटीज़ जैसी भयानक बीमारी है। अकेलापन हमारे सोचने-समझने की ताकत को कमज़ोर करता है। एक जर्मन विशेषज्ञ का मानना है कि अकेलापन एक ऐसी भावना है जो व्यक्ति को खालीपन का अनुभव कराता है और मन में अजीब ख़्याल आने लगते हैं, आत्महत्या एवं डिप्रेशन इसकी एक बड़ी वजह है। अमरिकी लेखिका एनेली रुफ़स ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि अकेले रहने के बहुत सारे फ़ायदे हैं। आप खुद पर ध्यान केन्द्रित कर पाते हैं, अपनी रचनात्मक शैली को बढ़ा सकते हैं। लोगों से मिलने-जुलने से, फ़िजूल बातें करने से, झूठे हंसी-मज़ाक करने से बेहतर है अकेले में वक्त बितायें। भारत एवं विश्व के अनेक देशों में साधक जो साधना पथ पर स्वयं को अग्रसर करते हैं, वे एकांत में रहना पसंद करते हैं। उनका मानना है कि एकांत में साधना सहज होती है इसलिए वो लोग घर-बार से दूर जंगलों और पहाड़ों की गुफाओं में जा कर साधना करते हैं।

अकेलापन और एकांत ये दो समानार्थी शब्द हैं परन्तु इनके अर्थ में आकाश-पाताल का अन्तर है। जब हम बाह्य संसार की ओर आकर्षित रहते हैं तब हम अकेलापन महसूस करते हैं परन्तु जब हम आन्तरिक जगत में खो जाते हैं तो एकांत अनुभव करते हैं। एकांत में आत्म चिन्तन स्वत: और सहज हो जाता है परन्तु अकेलेपन से व्यर्थ और नकारात्मक विचार चलने लगते हैं। अकेलापन सज़ा लगने लगता है और एकांत मजा देता है। अकेलेपन में तड़प है, एकांत में उत्साह है। अकेलेपन में घबराहट है, एकांत में शान्ति एवं उमंग है। अकेलेपन में भय एवं चिन्ता है जबकि एकांत एक सुखद यात्रा है। वास्तव में जीवन अकेलेपन से एकांत की ओर एक यात्रा ही है। इस यात्रा में यदि परमात्मा को हम अपना साथी या हमसफ़र बना लें तो जहाँ भय और चिन्ता का माहौल है, वहीं ये एक सुहाना एवं यादगार सफर बन जायेगा।

कम सामान तो सफर आसान

कवि गोपालदास नीरज की एक कविता है –

जितना कम सामान रहेगा,
सफर उतना आसान रहेगा।
जितनी भारी गठरी होगी,
उतना तू परेशान रहेगा।

जीवन के इस सफर में जितना हम एकान्तप्रिय बनेंगे उतनी हमारी ज़रूरतें कम होंगी और उतना ही सफ़र आसान और सुखदाई होगा। जितना व्यर्थ का बोझ हमारे साथ होगा, उतना हमें परेशान होना पड़ेगा। मन बाह्य जगत में जितना ज्यादा उलझा हुआ होगा, उतना हमें अन्तर्मन की यात्रा करने में असुविधा होगी। जितना हमारा मन सांसारिक बन्धनों से मुक्त होगा, उतना हमें एकांत में रहने का आनन्द मिलेगा।

समय परिवर्तनशील है

अचानक से आई इस विपदा से बहुत सारे लोग घबरा गये हैं एवं आने वाले कल के लिये फ़िक्रमंद हैं। न जाने कल क्या होगा? ऐसा होगा, वैसा होगा, पता नहीं कैसा होगा? अगर ऐसा हुआ तो क्या होगा, अगर वैसा हुआ तो क्या होगा?

समय परिवर्तनशील है। ऐसा, वैसा, जैसा भी होगा, अच्छा ही होगा। कल संकट नहीं था, आज है और कल को फिर से सब कुछ ठीक हो जायेगा। बुरा दौर आता है, चला जाता है। किसी शायर ने कहा है,

कुछ सिखा कर, ये दौर भी गुजर जायेगा,
एक बार फिर, हर इन्सान मुस्करायेगा,
मायूस ना होना मेरे दोस्तो इस बुरे वक्त से,
कल आज है और आज, कल हो जायेगा। ■■■

भोग्या नहीं, भगवती समझिए

■■■ ब्रह्माकुमार दिनेश, हाथरस (उ.प्र.)

पावन गंगा के इस देश में, कलिकाल के अन्तिम दौर में काम विकार का नाला उफान पर है। कब तक चलेगी यह काम कटारी और कब तक घायल होगी नारी। भारत में उपलब्ध आंकड़े तो यह कहते हैं कि एक दिन में 106 दुराचार के मामले दर्ज होते हैं। हम समझते हैं कि बाकी हजारों, लाखों तो केवल धर्मराज की डायरी में ही दर्ज हो पाते होंगे। ये उस देश के आंकड़े हैं जहाँ 'यत्र पूज्यन्ते नार्यस्तु रमन्ते तत्र देवता' का नारा है। यह उस देश की कहानी है जहाँ रामचरितमानस में 'अनुज वधू भगिनी सुत नारी को कुदृष्टि से विलोकने पर मौत की सजा है।' जहाँ महाभारत जैसे पुराण केवल एक नारी के अपमान का बदला लेने के लिए बन गये। दुराचार पर मोमबत्ती जलाकर या मौन जलूस निकाल कर विरोध दर्ज करने से नहीं लेकिन काम पर कुठाराघात करने से होगा परिवर्तन। पुरुष प्रधान समाज में भले ही 'बेटी पढ़ाओ, बेटी बचाओ' के नारे हैं परन्तु नारी को सामान्य लोग समझते दूसरे दर्जे की ही हैं। इसके पीछे बहुत से कारण हो सकते हैं, हम उनमें से कुछ पर ही अपनी भावनायें व्यक्त करेंगे।

नारी को भोग्या और वस्तु समझने की मानसिकता

पाँच हजार वर्ष पुरानी भारतीय सनातन संस्कृति में एक समय था जब नारी को बहुत ही सम्मान की नजरों से देखा जाता था। आज उसी नारी को उत्पादों को बेचने के लिए प्रमुखता से विज्ञापनों में दिखाया जाता है। यहाँ तक कि नारी को भी बेचने का कारोबार कलिकाल के इस चरम में, अनेक देशों में बड़े जोरों से चल रहा है। वहाँ भी उद्देश्य मात्र अपनी काम की कामनाओं की पूर्ति करना होता है। यह मानसिकता शिक्षित, अशिक्षित सभी में इस रूप में भी दृष्टिगोचर होती है कि व्यक्ति दूसरों को नीचा दिखाने या अपमानित करने या कहीं-कहीं तो केवल मजाक के लिए बातचीत में नारी अंगों से जुड़े हुए अश्लील शब्दों का प्रयोग करता है। उस समय वह व्यक्ति यह भी भूल जाता है कि उसकी भी माँ और बहन है। जिस शहर में लेखक है वह तो इतना बदनाम है कि लोग बात-बात पर अश्लील अपशब्दों का प्रयोग करते हैं। कैसी सड़ चुकी है मानसिकता! विचार करें कि जिसके बोलने वाले शब्द ही अपशब्द हैं उनका मन कितना गंदा होगा? इस मानसिक दुराचार को भी तो रोकने का प्रयास करिए।

सभ्य समाज का काला चेहरा

यह भी नारी को भोग्या समझने की ही मानसिकता है कि रोजाना महिलाओं के साथ होने वाले दुराचारों की हाड कंपा देने वाली घटनाओं के बाद भी यदि कोई महिला पवित्रता का व्रत धारण करने का संकल्प लेना चाहती है तो भी लोगों का वही घिसा-पिटा सदियों पुराना सवाल होता है कि सृष्टि कैसे चलेगी? यह सवाल 20 लाख से अधिक रजिस्टर्ड संन्यासियों से कोई नहीं पूछता, जो पत्नी को बेसहारा बनाकर अथवा अपने माता-पिता का सहारा न बनकर, संन्यास धारण कर लेते हैं। यदि नारी दृढ़ता से पवित्रता के व्रत का पालन करती है तो अब तक उसके लिए जो अच्छा भोजन, अच्छे वस्त्र आदि लाये जाते थे, वे तो बन्द हो ही जाते हैं, इसके बाद शारीरिक और मानसिक प्रताड़नाओं का भी दौर शुरू हो जाता है। इस प्रताड़ना के निराकरण के लिए कई बार तो देखा

गया है कि नारी को थाने और कोर्ट-कचहरियों में भी चक्कर लगाने पड़ते हैं। क्या यह उस समाज का काला चेहरा नहीं है जिसे सभ्य समझा जाता है?

रोज-रोज काम का गंदा नाला?

चलिए थोड़ी देर के लिए यह मान लिया जाए कि कलिकाल में इस प्रकार काम विकार से ही सृष्टि चलेगी तो भैया, क्या सृष्टि जीवन में एक-दो बार काम विकार के वशीभूत होने पर चलेगी या रोज-रोज काम के गंदे नाले में गिरकर ही चलेगी? ऐसे समय वेदों और उपनिषदों की ऋचायें सुनाने वाले एवं उनकी वकालत करने वाले कहाँ चले जाते हैं जो मानव को संयमित जीवन जीने की बात किया करते हैं? ऐसी मानसिकता वालों से केवल एक सवाल? क्या प्रत्येक व्यक्ति हर रोज ही नई सृष्टि सृजन का दायित्व निभाने का कार्य सम्पन्न करेगा? हम समझते हैं कि नारियों पर काम विकार से सम्बन्धित दुराचारों की बढ़ती घटनाओं के पीछे सबसे बड़ा कारण केवल उन्हें भोग की वस्तु समझना ही है।

क्या इन दुराचारियों को भी फाँसी के फन्दे तक पहुँचाने की बात कर पायेंगे?

जब किसी महिला के साथ काम विकार से सम्बन्धित पाशविक घटना घटित होती है तो लोगों द्वारा तमाम रैलियाँ निकाली जाती हैं और प्राय: इनमें भाइयों के अलावा माताओं, बहनों की भी संख्या बहुतायत में होती है। वे दोषियों को तुरन्त पकड़वा कर फाँसी की माँग करते हैं या फैसला ऑन द स्पॉट की बात करते हैं। लेखक भी काम विकार के अंधे दोषियों को सजा की आशा करता है लेकिन एक सवाल मन में आता है कि उन दुराचारियों का क्या करेंगे जो विवाह का प्रमाण-पत्र लेकर दुराचार करते हैं। न्यायालय ही नहीं, महिला आयोग ने भी यह माना है कि चाहे वह पत्नी ही क्यों न हो, उसकी सहमति के बिना काम विकार से सम्बन्धित किया गया व्यवहार भी दुराचार ही होता है। दिन भर घर, बच्चों की संभाल करने के बाद, चाहे वह बीमार है, मानसिक रूप से खुश नहीं है, उसकी सहमति के बिना उसके साथ की गई कामी हरकतें भी तो दुराचार ही हैं। हर रोज होने वाले इन लाखों, करोड़ों दुराचारों के लिए कौन रैलियाँ निकालेगा? कौन उन्हें फाँसी के फंदे पर ले जाने की बात करेगा? क्या यह माँग भारतीय सुसंस्कृत संस्कारों में पली कोई महिला कर सकेगी, जिसकी पीहर घर से विदाई यह कहकर होती है कि पति ही परमेश्वर है!

दायित्व निर्वहन करने वालों को भी साधना पर ही देना होगा ध्यान

क्या हिन्दू, क्या मुस्लिम, क्या सिक्ख, क्या ईसाई – आज की तारीख में चारों ही पंथों के अनेक शीर्ष व्यक्तित्व, जिनका नाम नहीं लेना चाहेंगे लेकिन सभी जानते हैं कि वे जेलों में अपना शेष जीवन पूर्ण कर रहे हैं। इससे भी लोगों का ध्यान अध्यात्म के नाम से विमुख हुआ है और लोग निकृष्ट कर्मों की ओर प्रवृत्त हुए हैं। यह हमेशा ही हुआ है कि जिस किसी साधक ने, साधना से प्राप्त साधनों और महिमा का उपयोग मदान्ध होकर किया है उसका पतन हुआ ही है क्योंकि भगवानुवाच, काम महाशत्रु है। इंसान के इस काम रूपी शत्रु ने अनेक राजाओं की राजाई को मिटाकर उन्हें कंगाल बनाया है। पहलवानों को पटखनी देने वाले अनेक बड़े-बड़े पहलवानों को धूल चटाई है। धर्म के धुरंधरों को धुंधकारी बनाया है। राजनीति के मैदान में बहुतों को पछाड़ने वालों को पछाड़कर सलाखों के बीच पहुँचाया है। ऐसे में जिन पर समाज को दिशा देने और परिवर्तन करने का दायित्व है, उन साधकों को तो राम का नाम बदनाम नहीं करना चाहिए। अपने वल्कल वस्त्रों, धवल वस्त्रों का तो ख्याल करना ही चाहिए। यदि साधना करने चले हैं और समाज भी चरित्र की राह दिखाने का दायित्व निर्वहन करने वाला समझ रहा है तो ऐसे साधक के लिए साधना ही सर्वोपरि है। नहीं तो दूसरा विकारी संसार, जिसे आप तिलांजली देकर आये थे, वह तो आपके स्वागत के लिए हमेशा खुला रहता ही है।

रोकना होगा मानसिक दुराचार, खोलनी पड़ेंगी संस्कारशालाएँ

कोई भी कार्य, शुभ या अशुभ, मानव मन में ही पहले आता है। किसी को मृत्युदण्ड देकर उसके संस्कारों का परिवर्तन नहीं हो सकता। क्योंकि, सनातन संस्कृति, श्रीमद्भगवद्गीता और हम भी ऐसा मानते हैं कि इस शरीर द्वारा कर्म करने वाली चैतन्य शक्ति आत्मा है, जो एक शरीर को छोड़कर दूसरा धारण करती है। माना कि किसी को मृत्युदण्ड दिया तो उसके केवल शरीर का ही परिवर्तन हुआ। आत्मा तो वही दूषित संस्कार लेकर गई और अगले जन्म में भी इन्हीं संस्कारों के अनुसार कर्म करने की संभावना बलवती है। यदि मन में अशुद्धता के ख्यालात आते हैं तो उनके बीज को ढूंढ़कर नष्ट करना ही होगा। पिछले दशक में जिस प्रकार से इण्टरनेट और संचार के माध्यमों की सर्व सहज सुलभता हुई है, उनका दुरुपयोग भी बहुत हुआ है। समाज की हवा ही खराब हुई है। सब कुछ इस हवा में है, जो चाहे सो देखो और प्राप्त कर लो। लोग वे भी थे जिन्होंने कभी कॉलेजों का मुख भी नहीं देखा था लेकिन संस्कारवान बनने की शिक्षा उन्हें घर पर कूट-कूट कर मिली। सुपरफास्ट तरीके से संसार विनाशकारी प्रगति कर रहा है। तभी तो लोग अपने काले कर्मों को भी हवा में लाइव टेलीकास्ट कर रहे हैं। ऐसे में समाज का और सरकार का भी दायित्व बनता है कि वह ऐसे संदेशों को भेजने वालों पर सख्ती बरते और संस्कारशालायें चलाये। मन से दुराचार की ओर होने वाली प्रवृत्ति रुकनी ही चाहिए। एक-दूसरे के प्रति व्यर्थ और अश्लील शब्दों का प्रयोग करने वालों को सद्विचारों-सद्व्यहार के लिए प्रेरित करना ही होगा। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी संगठन के संस्थापक आदिदेव पिताश्री ब्रह्मा बाबा कहते थे कि घर-घर में गीतापाठशालायें खोल दो जिससे लोग सदा के लिए मन, वचन और कर्म से निरोगी बन जायें, श्री लक्ष्मी-श्रीनारायण जैसे बन जायें। ऐसी संस्कारशालाएँ आज बच्चे, बूढ़े और जवानों के लिए खुलनी ही चाहिएँ। लोगों को भी काम विकार की रूढ़िवादी मानसिकता 'इसके बिना सृष्टि कैसे चलेगी' को परिवर्तन कर, नारी शक्ति को भोग्या नहीं, भगवती मानना ही होगा। ■■■

सुरक्षा कवच

■■■ ब्रह्माकुमारी राजकुमारी, मजलिस पार्क, देहली

भृकुटी में चमकते ओ अजब सितारे! देख ऊपर उस ओर,
चलो री आत्मन! परमधाम प्रकाश घर की ओर,
बना ले एक औरा प्रकाश का अपने चारों ओर,

रखना साथ परमात्म याद की ढाल, न कोई हवच,
ओढ़ ले रूहानी सशक्तिकरण, यही बनेगा तेरा सुरक्षा कवच।
ताकीदानुसार देह को रख घर में भले,
पर तू चल विदेही घर की ओर,

मिलती दिव्य दवा लाल स्वर्णिम किरणों की वहाँ ही,
होके शुद्ध-शुभ-समर्थ संकल्पी फरिश्ते-पन का करे काज,
आओ इसी क्वार्नटाइन में रहें लगातार हम और आप,
है यही सही इलाज, जरूरत बहुत इसी की आज, समझ,
न बन नादान, अपना ले इसे तुरंत बेझिझक,
सावधान! यही बनेगा तेरा भव्य सुरक्षा कवच।
देना ध्यान गंभीरता से जरा इस ओर,
चली आ आत्मन! परमधाम बचाव घर की ओर

भय-संशय-अपवादों की भीड़ में कतई मत जाना,
मत पड़ना व्यर्थ के रसास्वादन में, न सुनो भीतर का शोर,
दैहिक संकल्पों से सोशल डिस्टेंस रखके,
हो जा शांत-सुखमय-सूक्ष्म अलौकिक प्रकाश में सराबोर,
अरे कोरोना वायरस को क्या रोना?
रोशन कर ज्योति से हर ओर,
अंतर्जगत से दे सकाश प्रतिपल उन्हें जो सेवारत अचल,
भर दे दिव्य सशक्तिकरण आत्मन्! यही बनेगा सुरक्षा कवच।

धर्म और अधर्म

मनोज सिंघल
(ज्ञानामृत भवन, शान्तिवन)

आज संसार के अन्दर जो भी दु:ख-अशान्ति फैली हुई है, वो अधर्म के कारण फैली हुई है। अधर्म तो मनुष्य ही करता है क्योंकि मनुष्य को ये ही नहीं मालूम कि वास्तव में वो कौन है? उसको ये भी नहीं मालूम कि वास्तव में वो देह से न्यारी सूक्ष्म ज्योतिर्बिन्दु आत्मा है, शरीर तो हड्डी-माँस का मात्र पुतला है, आत्मा का रथ है, जिसको चलाने के लिए आत्मा ही रथी बनती है। अपने को देह समझने के कारण मनुष्य से सुबह से शाम तक अनेकों अधर्म के काम होते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि जब पता चल गया कि वास्तव में मैं आत्मा इस हड्डी-माँस के शरीर को चलाने वाली सूक्ष्म शक्ति हूँ तो मुझ आत्मा का वास्तविक स्व-धर्म क्या है, उस पर विचार चलना चाहिए। क्योंकि आत्मा ही अपने कर्मों के आधार पर देवात्मा, महान आत्मा, धर्मात्मा कहलाती है। मनुष्य रूप में आत्मा का पहला धर्म उसमें दया होनी चाहिए, उसमें उदारता होनी चाहिए। उसमें करुणा होनी चाहिए, उसमें क्षमा भाव होना चाहिए, उसमें रहमदिल की भावना होनी चाहिए, उसमें सर्व के प्रति शुभभावना-शुभकामना होनी चाहिए। इन्हीं दिव्यगुणों अथवा मूल्यों का वर्णन हर धर्म में मिलता है, चाहे वो हिन्दू हो अथवा मुसलमान हो अथवा सिक्ख हो अथवा ईसाई हो अथवा अन्य कोई भी धर्म हो। सभी धर्मों ने आत्मा के इन दिव्यगुणों को कहीं-न-कहीं स्वीकार किया है, तभी उनके धर्म-ग्रंथों में उसका वर्णन जहाँ-तहाँ पढ़ने को एवं समझने को मिलता है। वास्तव में यही दिव्यगुण अथवा मूल्य ही मानव समाज के दिव्य आभूषण हैं अथवा उनका निजी धर्म है अथवा यूँ कहें कि एक इंसान होने के नाते सच्ची इंसानियत है।

जब तुम किसी को क्षमा नहीं कर सकते, जब तुम किसी पर दया नहीं कर सकते, समय पर किसी के प्रति अपनी करुणा प्रकट नहीं कर सकते, जब तुम किसी के प्रति अशुभ भावनाओं को त्याग कर, शुभभावना-शुभकामना नहीं रख सकते तो इन सबके अभाव में तो वास्तव में तुम सुबह-से-शाम तक कार्य-व्यवहार में आते भी अनेकों के साथ अधर्म के ही कार्य करते हो। अधर्म करने वालों के प्रति धर्म-ग्रंथों में बोला गया कि वो नर्क को प्राप्त होता है। मैं कहता हूँ कि उस नर्क की बात को तो छोड़ो, अपने किये हुए रोज-रोज के अनेकों अधर्म के कार्यों के कारण मनुष्य को यहाँ ही नर्क जैसी यातना भोगनी ही पड़ती

है। वह लाख कोशिश कर ले, छूट नहीं सकता। चाहे उसका सम्बन्ध सीधे ईश्वर पिता से क्यों न हो! कर्मों के भुगतान से कोई छूटना चाहे, नहीं छूट सकता। कर्मों का भुगतान कब, किस समय, किस स्थिति में, किस आयु में, किस स्थान पर करना पड़े, यह मनुष्य कभी जान ही नहीं सकता। आत्मा के इन निजी गुणों को न अपना कर, हम अगर नकारात्मकता को अपने जीवन में स्थान देते हैं और उसी से प्रभावित होकर अन्य मनुष्यों से कार्य-व्यवहार में आते हैं तो इस अधर्म के कारण ही स्वयं मनुष्यों ने संसार को नर्क-तुल्य बना दिया है जिसके लिए अन्य किसी नर्क में जाने की क्या आवश्यकता है? इसलिए संसार भर में जहाँ-तहाँ दृष्टि उठाकर देखो तो मनुष्य अपने कर्मों का भुगतान यहाँ ही किसी-न-किसी रूप में प्राप्त कर रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्यात्मा को अपने असली धर्म को जानना चाहिए। वो असली धर्म है – आत्मा का धर्म अथवा मानवता का धर्म, जिसमें दिव्यगुणों की खुशबू आये, और जब उसको जानोगे, पहचानोगे तो आपको अपनी भूल का पता चलेगा कि जिस सुख-शान्ति-आनन्द की तलाश में मैं अज्ञानतावश इधर-उधर तन से और मन से भटक रहा था, वो तो मेरे अन्दर ही समाया पड़ा है। क्योंकि आत्मा अपने अनादि स्वरूप में – शान्त स्वरूप है, ज्ञान स्वरूप है, सुख स्वरूप है, पवित्र स्वरूप हूँ, शक्ति स्वरूप है। इसलिए किसी के सम्बन्ध-सम्पर्क में अथवा कार्य-व्यवहार में आते समय जब तुम आत्मा के धर्म में स्थित होकर मन-वचन-कर्म से जो भी करोगे, सही मायने में वही धर्म का कार्य होगा और उस धर्म के कार्य को करने से आपको और सामने वाले को एक आन्तरिक सुख-चैन की अनुभूति अवश्य होगी, ये मेरी गारण्टी है। आप बस अपने (आत्मा) स्वधर्म में स्थित होकर कार्य-व्यवहार में आकर तो देखो, तब स्वयं ही आपको पता चल जायेगा, इसको बताने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

जब हम किसी पर गुस्सा करते हैं, क्रोध करते हैं तो सबसे पहले-पहले नुकसान किसको होता है? सामने वाले का ब्लड-प्रेशर बढ़े न बढ़े, सबसे पहले तो अपना ही ब्लडप्रेशर बढ़ता है, अपना ही चेहरा लाल होता है, अपने ही शरीर में कंपन पैदा होता है। क्रोध करते समय गला और मुख किसका सूखता है? अपना ही ना! तो एक गुस्सा अथवा क्रोध करने से अपना ही सबसे अधिक नुकसान होता है, लेकिन जब हम शान्त हो जाते हैं तो सभी कुछ ठीक हो जाता है। क्योंकि आत्मा का स्वधर्म शान्त स्वरूप है, आत्मा का स्व-धर्म क्रोध स्वरूप नहीं है। वो तो बाह्य रूप है, जो किसी-न-किसी बात अथवा व्यक्ति के प्रभाव में आकर क्रोध का रूप बन जाता है, अन्ततः क्रोध के बाद शान्त होना ही पड़ता है, आत्मा को अपने स्व-धर्म में वापिस आना ही पड़ता है। जैसे पानी का गुण शीतलता है उसको अग्नि पर चढ़ा दो तो गर्म हो जायेगा और अग्नि से उतार कर नीचे रख दो तो थोड़ी ही देर में ठण्डा हो जायेगा अर्थात् पानी अपने असली गुण शीतलता में आ जायेगा। अतः मानसिक विकृतियों से ऊपर उठने के लिए आत्मा के स्वधर्म में टिकने का अभ्यास करना ही होगा, तभी हम धर्ममय हो सकते हैं, अन्यथा धर्म-अधर्म की चर्चा तो कोरी कल्पना बन कर रह जायेगी!

श्रीमद्भगवद्गीता में भी यही कहा गया है कि – कोई किसी का शत्रु अथवा मित्र नहीं है, अपितु आत्मा ही स्वयं अपना शत्रु और मित्र है। जब हम आत्मा के स्वधर्म में स्थित होकर कार्य-व्यवहार में आयेंगे तब हमसे जो भी होगा, वह धर्म का कार्य होगा और जहाँ धर्म का कार्य होगा, वहाँ आत्मा उस समय स्वयं का ही स्वयं मित्र है। अगर आत्मा के स्वधर्म में स्थित न होकर, अपने को मात्र देह समझ कर कार्य-व्यवहार में आयेंगे तो जाने-अनजाने बहुत सारे अधर्म के कार्य होंगे, वहाँ आत्मा स्वयं ही स्वयं का शत्रु है। भले दुनिया का ज्ञान न हो, भले दुनिया के अपार सुख न हों लेकिन आत्मा के स्वधर्म में रहना सीख लिया तो सब कुछ पा लिया, वर्ना सब कुछ प्राप्त होते हुए भी जन्म-जन्मान्तर के लिए खाली के खाली रह जायेंगे। ■■■

विशेषता का गलत इस्तेमाल मत करो

ब्रह्माकुमार विनायक, सोलार प्लान्ट, शान्तिवन

18वीं सदी की बात है, इमैन्युअल लिंगर नाम का एक चित्रकार जर्मनी से आकर अमेरिका के एक गाँव में रह रहा था। वह बहुत ही सुंदर चित्र बनाता था इसलिए लोग उसे बहुत पसंद करते थे। एक दिन उसके मन में एक बहुत ही खराब विचार यह आया कि क्यों न मैं डालर का नकली नोट बनाऊँ और शीघ्र ही अमीर बन जाऊँ। इस खयाल से वह तीव्र उत्तेजित हुआ। तुरंत ही नोट बनाने के लिए कागज, अलग-अलग रंग आदि इकट्ठे किये और नोट बनाना शुरू कर दिया। हाथ से ही नोट का चित्र बनाना था, यह बहुत ही कठिन काम था। एक सप्ताह में केवल 20-30 डालर ही बना पाता था और उन्हीं से जीवन गुजारता था।

एक सुबह उसने सब्जी खरीदी, नकली नोट निकाल कर सब्जी वाले को दिया और चल पड़ा। सब्जी वाला हमेशा बोरी के नीचे पैसे इकट्ठे करता था, उस नोट को भी बोरी के नीचे रख दिया। जब घर लौटने का समय हुआ तो उसने गिनने के लिए सारे पैसे बाहर निकाले। देखता है कि एक नोट का रंग फैला हुआ है और दूसरे नोटों को भी लग गया है क्योंकि बोरी थोड़ी-सी गीली थी। बाकी नोट सिर्फ गीले हुए थे लेकिन नकली नोट का रंग फैल गया था। आस-पास वालों को भी पता चला कि नकली नोट बाजार में आया है। देखते-देखते वहाँ भीड़ लग गई।

समाचार मिलते ही पुलिस भी आ पहुंची। सब्जी वाले को पता था कि यह नोट लिंगर ने दिया है क्योंकि उस दिन इतने बड़े मूल्य का नोट वह एक ही था। लिंगर को वह पहचानता था। पुलीस वालों को वह लिंगर के दरवाजे तक ले आया। पुलिस धीरे से अंदर आकर देखती है कि कमरे में रंग, कूची, कागज आदि बिखरे हुए हैं और उनके बीच लिंगर एक नया नोट बनाने में तल्लीन है। उसको गिरफ्तार किया गया और इस अपराध के लिए उसे तीन साल की सजा हुई।

जेल में उसको पूछा गया कि वह क्या काम कर सकता है। लिंगर ने कहा, मुझे आता ही एक काम है, चित्र निकालना। जेल के अधिकारी ने जरूरी सामग्री मंगवाकर उसे दे दी और कहा, ठीक है, तुम चित्र बनाते रहो। दिन ब दिन चित्रकला में रौनक आती गयी। उसके चित्रों से सजीवता और गहरी भावनाओं की भासना आती थी। इन चित्रों को जेल वाले बेच देते थे।

अच्छे स्वभाव को देखकर लिंगर की सजा को कम कर दिया गया और चित्रों को बेचने से जो पैसे मिले उन्हें लिंगर को ही देने का निर्णय लिया गया। जेल से रिहाई होने के पहले अधिकारी ने कहा, लिंगर, अपने पैसे ले लो। कैदियों की मजदूरी बहुत कम होती थी इसलिए लिंगर ने उदास होकर पूछा, कितने पैसे मिलेंगे? अधिकारी का जवाब सुनकर लिंगर भौचक्का रह गया। वे थे 75 हजार डालर। लिंगर को लगा, कहीं अधिकारी मजाक तो नहीं कर रहा है। उसके आश्चर्य को देख अधिकारी ने कहा, लिंगर, तुम्हारा एक-एक चित्र हजारों डालर मूल्य में बिका है। लिंगर के कंधे पर हाथ रखते हुए अधिकारी ने कहा, तुम बड़े नादान हो लिंगर, तुम एक विश्व प्रसिद्ध चित्रकार बन सकते हो पर इतनी महान विशेषता, जो भगवान की देन है, उसको तुमने चोरी के काम के लिए

इस्तेमाल किया, अब तो सुधर जाओ।

आगे चल लिंगर एक प्रसिद्ध चित्रकार तो बने लेकिन पश्चाताप का एक तीखा कांटा उन्हें जिंदगी भर चुभता रहा कि भगवान की इस देन का गलत इस्तेमाल करने के कारण मुझे सजा खानी पड़ी।

अब हम सभी राजयोगियों को अपनी-अपनी जांच करनी है। विश्व के सामने उदाहरणमूर्त बनाने के लिए भगवान शिवपिता ने वरदान के रूप में पाँच विशेषताएँ हमें दी हैं। मन को ईश्वर में लगाना, ईश्वरीय ज्ञान का मंथन करना, बुद्धि को शिव पिता की याद में एकाग्र करना, व्यर्थ से मुक्त बनना या स्वदर्शन चक्र फिराना और सदा सर्व के प्रति शुभ सोचना। हमें देखना है कि कहीं हम इन विशेषताओं का गलत इस्तेमाल तो नहीं कर रहे हैं अर्थात् मन को शिवपिता के बजाय व्यक्ति, वस्तु, वैभव में तो नहीं लगाकर बैठे हैं? ज्ञान-मंथन के बजाय व्यर्थ व दुनियावी बातों को तो नहीं पीस रहे हैं? बुद्धि को याद में एकाग्र करने के बजाय टी.वी., सिनेमा, विडियो, मोबाइल, दुनियावी समाचार, मनोरंजन आदि में तो मगन नहीं कर रखा है? स्वदर्शन को छोड़ परचिंतन में तो नहीं डूबे हैं? नफरत, ईर्ष्या, बदला लेना, इन भावनाओं को रखने के लिए दिल का इस्तेमाल तो नहीं कर रहे हैं?

अगर इन विशेषताओं का गलत उद्देश्य के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं तो हमें अवश्य याद रखना है कि एक दिन दुनिया हमें जरूर कहेगी कि भगवान ने ऊँचे बनने के लिए तुम्हें वरदान दिया लेकिन तुमने उसका नीचे गिरने के लिए इस्तेमाल किया, तुम्हारे जैसा नादान दुनिया में दूसरा कोई नहीं है। मैंने ऐसा क्यों किया? यह प्रश्न पश्चाताप का रूप बन हमें अंतिम श्वास तक सताता रहेगा।

लिंगर की आँखें सजा खाने के बाद खुलीं लेकिन हम सजा के पहले ही अच्छी रीति आँखें खोलकर खुद की जाँच कर लें। अपनी विशेषताओं को शिवपिता को प्रत्यक्ष करने के लिए सफल करें और विश्व के सामने उदाहरणमूर्त बनें। ■■■

श्रद्धा-सुमन अर्पित

ब्रह्माकुमार राकेश कुमार शर्मा, भरतपुर (राज.)

'स्मृति दिवस' पर, अर्पित श्रद्धा-सुमन,तुम्हारे।
हम याद तुम्हें करते, सौभाग्य हैं हमारे।।

अज्ञान-ग्रसित जन को, सद्ज्ञान दिया तुमने।
रूहानियत का सबको, वरदान दिया तुमने।।
एक दिव्य दृष्टि देकर, संस्कार भी सँवारे।
हम याद तुम्हें करते, सौभाग्य हैं हमारे।।

गरिमामय व्यक्तित्व लिये, ओज भरी वाणी।
दिव्यता की मूरत, जगदम्बा, कल्याणी।।
जब-जब भ्रमित हुए हम, हर बार हैं उबारे।
हम याद तुम्हें करते, सौभाग्य हैं हमारे।।

साहस, त्याग, दृढ़ता, निर्भयता, नैतिक बल।
अचल, अडोल ही रही,आई न कोई हलचल।।
शिव-शक्ति सेना के व्यक्तित्व हैं सँवारे।
हम याद तुम्हें करते, सौभाग्य हैं हमारे।।

पावनता, ज्ञान, योग, तप और सहनशीलता में।
ईश्वरीय-यज्ञ के हित हर कठिन परीक्षा में।।
अर्पण रहे प्रभु को सदा, मन-प्राण भी तुम्हारे।
हम याद तुम्हें करते, सौभाग्य हैं हमारे।।

ओम की ध्वनि के संग, जब दिव्य-गीत गातीं।
मन-वीणा के तारों को, झंकृत कर जाती।।
गूँज रहे अब तक, स्वर-बोल वो तुम्हारे।
हम याद तुम्हें करते, सौभाग्य हैं हमारे।।

तुम ज्ञानदायिनी हो, सद्बुद्धि प्रदाता हो।
जीवन-दाता के जैसी, तुम जग की माता हो।।
तेरी ही पालना में, पाये हैं सुख सारे।
हम याद तुम्हें करते, सौभाग्य हैं हमारे।।

भय का भूत

ब्रह्माकुमार लोकपाल, आवास-निवास, शान्तिवन

आज हर मनुष्य के अंदर किसी न किसी प्रकार का भय व्याप्त है। भय माना डर, उसके कई पहलू हैं। भय का बहुत सारा हिस्सा विचारों पर आधारित अर्थात् काल्पनिक होता है। बिना कुछ किये भी सिर्फ शंका, अनुमान के आधार पर भी भय हावी हो सकता है। अगर इस भय की तीव्रता बढ़ जाए तो यह गंभीर बीमारी फोबिया का रूप धारण कर लेता है। चूँकि यह मानसिक बीमारी है इसलिये इसका इलाज इतना आसान नहीं है, इसके लिए मन को शक्तिशाली बनाना पड़ता है।

बिल्ली को देख आँखें बंद कर लेना

भय किस तरह हमारी शक्तियों और विशेषताओं को पंगु बना देता है, इसे हम बिल्ली और कबूतर के उदाहरण से समझ सकते हैं। अगर बिल्ली अचानक कबूतर के सामने आ जाये तो वह इतना भयभीत हो जाता है कि यह भी भूल जाता है कि मैं उड़ भी सकता हूँ। भय के मारे उड़ने के बजाय आँखें ही बंद कर लेता है और अगले ही पल शिकार बन जाता है। कबूतर के पास पर्याप्त समय और सामर्थ्य था अपने को बचाने का पर भय ने सबकुछ भुला दिया। इसी प्रकार हमारे पास भी परिस्थिति से निपटने के लिए पर्याप्त समय और शक्ति होती है पर भय के कारण सबकुछ भूल जाते हैं और हार कर बैठ जाते हैं कि अब कुछ नहीं हो सकता।

जितना ज्यादा भय, परिस्थिति उतनी ही बड़ी

भय हमें कमजोर और परिस्थितियों को मजबूत अर्थात् बड़ा बना देता है। एक बार गुरुकुल में श्रीकृष्ण और बलराम को रात्रि में क्रमशः प्रहरी के रूप में जागना था। जिस रात्रि को बलराम जाग रहे थे तभी एक भयानक राक्षस आ गया। उसे देख बलराम भयभीत हो गये। जितना वो भयभीत हो रहे थे, राक्षस का आकार भी बढ़ता जा रहा था। अंततः बलराम भय से मूर्च्छित हो गये। दूसरी रात जब श्रीकृष्ण की पहरेदारी पूरी हो गयी तो बलराम ने पूछा, क्या आपके पास कोई राक्षस आया था? उन्होंने कहा, हाँ और जेब से निकाल कर वही राक्षस दिखाया जो खिलौने की तरह लग रहा था, उसका आकार बहुत छोटा हो चुका था। तब श्रीकृष्ण ने बताया कि आप डर गये इसलिये उसका आकार बढ़ गया। मैं निर्भयता के साथ उसका सामना कर रहा था इसलिए वह छोटा होता गया।

भय के कारण

भय के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे कि मृत्यु का भय, पूर्वजन्म की कोई भयावह घटना जिसकी सूक्ष्म स्मृति इस जन्म में भी भयभीत करती रहती है। पापकर्म की काली परछाई भी इंसान को इर्द-गिर्द घूमती हुई दिखाई देती है और उसे भयभीत करती है। झूठ बोलना और फिर झूठ पकड़ा न जाये, इसका भी भय होता है। अंदर कुछ और बाहर कुछ, ऐसे व्यक्ति को सच का सामना करने से भय लगता है। लोकलाज का भी भय होता है कि लोग क्या कहेंगे और कई बार अधूरा ज्ञान भी भय का कारण बन जाता है।

जो डर गया सो मर गया

कई बार अत्यधिक भय के कारण मृत्यु भी हो जाती है। क्योंकि, भय के कारण हमारे मस्तिष्क की अतःस्रावी ग्रंथियां बहुत मात्रा में एड्रेनालाइन नामक

जहरीला रसायन छोड़ने लगती हैं, जो जहर का ही काम करता है। हमारा मस्तिष्क संकल्पों के आधार पर संसार के सबसे घातक जहर का निर्माण भी कर सकता है और जीवनदायी अमृत का भी। दुर्घटनाओं के सर्वेक्षण में यही बात सामने आयी कि दुर्घटनाग्रस्त लोग भयभीत हो गये और सही निर्णय नहीं कर पाये। लगाना था ब्रेक और भय के कारण एक्सीलेटर दबा बैठे। मुड़ना था दायें और बायें मुड़ गये। जो निर्भय रहे उनकी बुद्धि स्थिर रही और स्थिर बुद्धि से सही निर्णय लेकर अपनी और हजारों लोगों की जान बचाई। युद्ध-नीतियों में भी पहले शत्रु के मन को भयभीत करते हैं जिस कारण से उसे हराना और मारना आसान हो जाता है। डाली से कभी न चूकने वाला बन्दर, शेर की दहाड़ सुनकर हाथ ढीले हो जाने के कारण पेड़ से गिर जाता है। भयभीत व्यक्ति बार-बार भय से मरता है, निर्भीक केवल एक बार।

मनोवैज्ञानिक सच

अगर किसी बात को लेकर आपके मन में भय है तो आप उसका अपने जीवन में आह्वान कर रहे हैं चाहे वो बीमारी हो या अन्य कोई परिस्थिति, उसके लक्षण आपके शरीर में आने लगेंगे।

एक बार मैं सेन्टर के पर्दों में आलपिन लगा रहा था। दोनों हाथ फ्री करने के लिए मैंने 5-6 आलपिन मुँह में दबा लीं। बाद में मुझे ऐसा शक हुआ कि कहीं एकाध आलपिन अंदर तो नहीं चली गयी। थोड़ी ही देर बाद मुझ में घबराहट, पेट-दर्द, सिर-दर्द, उल्टी और पसीना-पसीना जैसे लक्षण प्रकट होने लगे। जाँच में जब पिन अन्दर नहीं पायी गयी तो मैं सामान्य हो गया। पिन अन्दर नहीं गयी थी, एक वहम था, भय था जिस कारण ये लक्षण प्रकट हुये। हमारे अवचेतन मन में बहुत शक्ति है परन्तु उसको झूठ-सच से मतलब नहीं रहता। उसका काम है, जो भी हमने सोचा उस पर काम शुरू कर देना।

कैसे भगायें भय को

1.स्वयं की स्मृति – जब तक हम स्वयं को देह मानते हैं, तब तक अनेक प्रकार के भय हमें परेशान करते हैं। जैसे ही हम अपने वास्तविक स्वरूप का अनुभव करते हैं कि मैं एक चैतन्य, निर्भीक, अजर, अमर आत्मा हूँ तो हम निर्भय बन जाते हैं। आत्मा तो स्वयं में ही शक्ति का पूँज है। उसे किसी भौतिक सहारे और शक्ति की जरूरत ही नहीं हैं। गीता में कहा भी गया है –

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावक:
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुत:

अर्थात् आत्मा को न कोई शस्त्र काट सकता है, न अग्नि जला सकती है, न पानी भिगो सकता है, न हवा सुखा सकती है।

गौतम बुद्ध का सामना जब डाकू अंगुलीमाल से हुआ तो वे जरा भी भयभीत नहीं हुये। अंगुलीमाल ने कहा, हे संन्यासी, तुम्हें मुझसे भय नहीं लगता, मैंने अनेक लोगों को मारकर उनकी उँगलियों की माला बनाकर पहनी है, देखो और मैं चाहूँ तो इसी समय तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर सकता हूँ। बुद्ध ने मुस्कराते हुए कहा, यदि तुम ऐसा करोगे तो मैं अपनी गर्दन कटते हुए उसी प्रकार देखूँगा जिस प्रकार तुम देखोगे क्योंकि मैं यह नश्वर शरीर हूँ ही नहीं, मैं तो अविनाशी चेतना हूँ।

2.परमात्म स्मृति – कहा जाता है, 'जिसका साथी हो भगवान, उसको क्या रोकेगा आँधी और तूफान।' अगर भगवान का साथ है तो संसार रूपी सागर में कितनी भी लहरें आयें पर हमें डुबो नहीं सकतीं। ईश्वर अपने साथ हैं तो डरने की क्या बात है! इस जीवन सफर में खुदा को अपना दोस्त बनाइये, फिर देखिए, आप बड़े से बड़े भय को भी आसानी से खेल की तरह पार कर लेंगे और सम्पूर्ण निर्भय आत्मा बन जायेंगे। ■■■

स्व परिवर्तन से संसार परिवर्तन

■■■ ब्रह्माकुमार सूरज, बर्रा-2, कानपुर

आज संसार में यदि देखें तो अरबों मनुष्य हैं लेकिन एक का चेहरा न मिले किसी दूसरे से। इसे कुदरत का करिश्मा कहें या कुशल कारीगरी कहें। थोड़ी देर के लिए हम विचार करें कि यदि हमारी नाक मस्तक पर होती, आँखें मुँह की जगह होती, मुँह आँखों की जगह होता तो हम कैसे दिखते! प्रकृति ने खूब सोच-समझ कर मानव की आकृति बहुत अच्छी बनायी है। काश! मानव का चित्र जितना सुन्दर है, उतना ही उसका चरित्र भी सुन्दर बन जाता तो कितना अच्छा होता!

इस संसार में प्रतिक्षण, प्रति वस्तु में परिवर्तन होता ही रहता है। आज जो नई है, कल पुरानी होगी। पुरानी फिर नई होगी। शरीर को जन्म मिला, जवान हुआ, बूढ़ा हुआ और मर गये। फिर बच्चे के रूप में नया जन्म मिल गया। इस प्रकार, परिवर्तन होता रहता है लेकिन हम दो चीजों में परिवर्तन करके स्वयं और संसार को श्रेष्ठ बना सकते हैं। 1.परिस्थितियों का परिवर्तन 2.स्वयं का परिवर्तन

परिस्थितियों का परिवर्तन

आज संसार में जितनी भी परिस्थितियाँ हैं, कहीं बाहर से नहीं आई हैं, मानव निर्मित हैं, हम इन सभी परिस्थितियों को तभी बदल सकते हैं जब पूरी मानव जाति इन्हें बदलने के लिए तैयार हो लेकिन हम इन्तजार नहीं कर सकते कि सब इसके लिए तैयार हों। न ही हम यह कह सकते हैं कि जब परिस्थितियाँ बदलेंगी तब हम भी बदलेंगे। हम परिस्थितियों के बदलाव के सहारे बैठे नहीं रह सकते और न ही हम अकेले परिस्थितियों को बदल सकते हैं।

स्वयं का परिवर्तन

हमारे अन्दर विचार आते हैं कि हम एक महान आत्मा बनें, अच्छे संस्कार वाले बनें, पुण्य आत्मा बनें, श्रेष्ठ आत्मा बनें लेकिन इसके लिए आगे कदम बढ़ाने में हिम्मत नहीं रख पाते, सोचते हैं कि अगर ऐसा किया तो लोग क्या कहेंगे? लेकिन लोगों की चिन्ता छोड़ स्वयं को तैयार करना है। जब तालाब में हम पत्थर फेंकते हैं तो लहर उसी जगह से निकलती है जहाँ पत्थर फेंका जाता है। फिर वह लहर पूरे तालाब में फैल जाती है। इसलिए सदा यही सोचना है कि परिस्थितियों का कारक मैं हूँ, मुझे स्वयं ही बदलना है, किसी दूसरे का इन्तजार नहीं करना है कि पहले वह बदले, तब मैं बदलूँ।

एक बुजुर्ग पार्क में घूमने के लिए गया। वहाँ पाँच लोग उसे अपनी उम्र के और मिल गये। सभी ने उससे अपने जीवन के बारे में बतलाने के लिए कहा। उसने बताया कि जब मैं बालक था तो रोज भगवान से प्रार्थना किया करता था कि भगवान मुझे ऐसी शक्ति देना कि मैं संसार का परिवर्तन कर सकूँ लेकिन मैं संसार का परिवर्तन नहीं कर सका और जवान हो गया। जवान होने पर भी मैं परमात्मा से सदा यही प्रार्थना करता था कि मुझे ऐसी शक्ति देना कि मैं समाज का परिवर्तन कर सकूँ, मैं वह भी नहीं कर सका। धीरे-धीरे मेरी उम्र बढ़ती गई, मैं बुजुर्ग हो गया; न संसार का परिवर्तन कर पाया, न समाज का। अब मैं भगवान से यही प्रार्थना करता हूँ कि भगवान मुझे ऐसी शक्ति देना कि मैं स्वयं का परिवर्तन कर सकूँ।

जो बात इस बुजुर्ग को वृद्धावस्था में समझ में आई, हमें उसे जवानी में ही समझ लेना है और स्वयं को बदलकर, अपने में दैवी गुण धारण कर, नर से नारायण व नारी से लक्ष्मी बनने का लक्ष्य रखकर आगे कदम बढ़ाते जाना है। इस प्रकार एक-एक के बदलने से यह कलियुग चला जायेगा और सतयुग आयेगा जहाँ हर मानव देवता कहलायेगा। ■■■

टूटते हुये सम्बन्धों को कैसे बचायें?

ब्रह्माकुमारी ज्योति, राजापार्क, जयपुर

एक बहुत बड़ी समस्या वर्तमान समय की यह है कि हम छोटी-छोटी बातों के कारण अपने सम्बन्धों को तोड़ देते हैं। यदि छोटी-छोटी बातों को ध्यान में रखें तो सम्बन्ध टूटने से बच सकते हैं।

आज के समय में हम सम्बन्ध जोड़ तो बहुत जल्दी लेते हैं लेकिन निभा नहीं पाते। जोड़ना बड़ी बात नहीं है, निभाना बड़ी बात है। निभाना भी मजबूरी से नहीं, प्यार से निभायें और निभाने के साथ-साथ मधुर भी बनें। मधुर बनने के लिए अपने रिश्ते को स्वीकार कर लें कि वे जो हैं, जैसे हैं, हमारे हैं। जहाँ यह भाव आयेगा 'वे मेरे हैं' तो मेरे में प्रेम समाया है। प्रेम होगा तो ही मधुर सम्बन्ध बनेंगे। सम्बन्धों में प्रेम तो लाना है लेकिन प्रेम के बदले मोह को कभी न आने दें क्योंकि प्रेम और मोह में अन्तर है। प्रेम वह होता है, जो निस्वार्थ हो, संसार और परमात्मा दोनों के साथ समान रूप से हो। उदाहरण के लिए एक डाक्टर सबका ऑपरेशन करके दर्द से छुड़ा देता है लेकिन अपने बेटे का ऑपरेशन करना पड़े तो उसके हाथ कांपते हैं, चाहते हुए भी उसे दर्द से नहीं छुड़ा सकता क्योंकि उससे मोह है।

वर्तमान समय सम्बन्धों में टकराव इसलिए हो रहे हैं क्योंकि हमारे संस्कार भी नहीं मिलते और हम मिलाना भी नहीं चाहते । अपने संस्कारों को मिलाने के लिए हम देखें, शंकर जी के परिवार में सबके वाहन एक-दूसरे से विपरीत हैं, फिर भी इकट्ठे रहते हैं। ऐसे हमें भी अलग-अलग और विपरीत संस्कारों को मिला के चलना है और पहले मुझे ही मिलाना है, पहले मुझे ही झुकना है। हम सोचते हैं, क्या हमारे झुकने से, हमारे बदलने से सामने वाला बदल जायेगा? जी हाँ, हमारे बदलने से वह जरूर बदलेगा। जब एक पत्थर पर निरन्तर पानी की बूंदें पड़ने से वह शिवलिंग का रूप ले सकता है, तो हमारे निरन्तर बदलने से हमारा घर, हमारा समाज भी अवश्य बदलेगा, बस पहला कदम हमें उठाना है। घोर अन्धेरे का दीपक बनकर हमें दूसरों को एक नई राह दिखानी है।

यहाँ मुझे जो सम्बन्ध मिले हैं, मेरे कर्मों के अनुसार मिले हैं, कर्मों का यह ज्ञान बुद्धि में रख कर्म करने हैं। वर्तमान रोल को खुशी से प्ले करना है, कभी भी दूसरों पर निर्भर नहीं बनना है। अपने पर, अपनी योग्यताओं पर, अपने लक्ष्य पर और परमात्मा पर विश्वास रखना है, फिर कभी दु:खी नहीं होंगे। तुलना नहीं करनी है। जो भी मिला है, हमारे लिए विशेष है। जब हम अपने रिश्ते का सम्मान करेंगे, उसकी कमियों को नज़रअन्दाज़ करेंगे तो हल्के रहेंगे। इसकी शुरूवात पास के लोगों से करनी है।

दुनिया के सम्बन्धों में, अधिकतर, दु:ख और धोखा है इसलिये वर्तमान एक जन्म उस परमपिता से सर्व सम्बन्धों का रस लेना है। लौकिक सम्बन्धों को निभाते हुए भी अविनाशी परमात्मा पिता के साथ सम्बन्ध जोड़ के रखना है। वह हर सम्बन्ध को निभाने के लिए सदा हाजिर है। जैसे अर्जुन ने दोस्त का, माता अनुसूईया ने बच्चे का, प्रह्लाद ने पिता का और मीरा ने प्रीतम का सम्बन्ध जोड़ा, ऐसे हम भी हर सम्बन्ध शिव परमात्मा से जोड़ लें, वह अवश्य निभाता है, निभाने के लिए बंधायमान है। ■■■

सुरक्षित जीवन सफर के लिये कुछ नियम

ब्रह्माकुमारी चन्द्रिका, दहानुकरवाड़ी (मुम्बई)

जिस प्रकार सड़क सुरक्षा के लिए सरकार कई नियम लागू करती है, जिन पर चलना जरूरी होता है, उसी प्रकार मानव के लिये अपने जीवन के सफर में भी कई प्रकार के संयम-नियम पर चलना जरूरी है। आध्यात्मिक मार्ग दिखाने वाले गाइड स्वयं परमपिता परमात्मा शिव हैं, जो नित्य हमें मार्गदर्शन देते रहते हैं। सावधानी के रूप में निम्नलिखित 10 बातें अवश्य पालन करें।

- सुस्ती, आलस्य, अलबेलेपन के चोरों से बचें।
- दृढ़ता की सीटबेल्ट पहन कर रखें।
- दुर्व्यसन की गलत आदतों से दूर रहें।
- जीवन में घट रही हर घटना को, चाहे अच्छी हो या बुरी, साक्षीभाव से देखते हुए, उससे प्रेरणा लेकर आगे बढ़ जाएँ, रुकें नहीं।
- सभी को सहयोग देने की भावना बनी रहे।
- उन्नति की गति को कम करने वाली कोई बात आ जाए अर्थात् स्पीडब्रेकर आ जाए तो धीरज और शान्ति से काम लें, जल्दबाजी ना करें।
- सबको आगे बढ़ाते हुए आगे बढ़ें, ओवरटेक ना करें।
- मंजिल पर पहुँचाने वाला साधन शरीर रूपी वाहन है, उसकी भी संभाल अवश्य करें।
- अपने किसी स्वभाव-संस्कार के वश हो तनावपूर्ण वातावरण न बनाएं अर्थात् स्वयं की इन्द्रियों पर नियंत्रण रखें।
- जीवन के सफ़र में परमात्मा के साथ का अनुभव करते हुए; खुशी, आनंद, उमंग-उत्साह में रहते हुए समय को सफल करें। ■■■

सदस्यता शुल्क :

(भारत) वार्षिक: 120/- आजीवन : 2,000/-
(विदेश) वार्षिक - 1,000/- आजीवन - 10,000/-

शुल्क ड्राफ्ट या ई-मनीऑर्डर द्वारा भेजने हेतु पता :

'ज्ञानामृत', ज्ञानामृत भवन, शान्तिवन- 307510
(आबू रोड) राजस्थान, भारत।

For Online Subscription: **Bank**: State Bank of India, **A/c Holder Name :** Gyanamrit, **A/c No:** 30297656367
Branch Name : PBKIVV, Shantivan, IFSC Code: SBIN0010638

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क सूत्र :
Mobile: 09414006904, 09414423949, 02974-228125 **Email:** hindigyanamrit@gmail.com, omshantipress@bkivv.org

ब्र.कु. आत्मप्रकाश, मुख्य सम्पादक एवं प्रकाशक, ज्ञानामृत भवन, शान्तिवन, आबूरोड द्वारा सम्पादन तथा ओमशान्ति प्रिन्टिंग प्रेस, शान्तिवन-307510, आबूरोड में प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय के लिए छपवाया।
मुख्य सम्पादक - ब्र.कु. आत्मप्रकाश, **सम्पादक** - ब्र.कु. उर्मिला, शान्तिवन, **सह-सम्पादक** - ब्र.कु. सन्तोष, शान्तिवन

फोटो, लेख, कविता या अन्य प्रकाशन सामग्री के लिये :
E-mail : gyanamritpatrika@bkivv.org, omshantiprintingpress@gmail.com, Website: gyanamrit.bkinfo.in

RNI No.10563/1965, Postal Regd. No.RJ/SRO/9559/2018-2020 Posting at Shantivan-307510 (Abu Road) Licensed to post without prepayment No. RJ/WR/WPP/002/2018-2020. Published on 20th of each Month & Posted on 26th to 1st of each month. Price 1 copy Rs. 8.50, Issue : June, 2020.

If undelivered, please return to Gyanamrit Bhawan, Shantivan, Abu Road, Sirohi-307510